तृतीय अध्याय :
छायावादी काव्य-दृष्टि

३ छायावादी काव्य दृष्टि

(क) काव्य का स्वरूप

`प्रसाद` के विचार :

छायावादी कवियों में श्री जयशंकर प्रसाद जी का एक प्रमुख स्थान है। उन्होंने काव्य-विषयक अपने विचारों को यत्र-तत्र निबंधों और लेखों में व्यक्त किया है। काव्य के विषय में वे कहते हैं कि :-

` काव्य आत्मानुभूति की मौलिक अभिव्यक्ति है। ---- कला को भारतीय दृष्टि में उपविद्या माना गया है।`[१] काव्य को कला से श्रेष्ठ कहा गया है। काव्य में हृदय तत्व का प्राधान्य है और कला में बुद्धि तत्व का। अपने इस मत का प्रतिपादन करते हुए वे आगे कहते हैं कि:- ` कला को भारतीय दृष्टि में उपविद्या मानने का जो प्रसंग उठता है उससे यह प्रकट होता है कि यह विज्ञान से अधिक महत्व रखती है। उसकी रेखाएं निश्चित सिद्धान्त तक पहुंचा देती हैं।`[२] स्पष्ट है कि कला का संबंध बुद्धि से होता है और बुद्धि तत्व का प्राधान्य विज्ञान में अधिक होता है। अत: कला का संबंध विज्ञान से अधिक है। परन्तु काव्य हृदय तत्व से युक्त होता है। अत: इसमें रागात्मक तत्वों का प्राचुर्य होता है जिसमें विज्ञान के स्थूल, भौतिक एवं बुद्धिजन्य तत्वों के लिए स्थान नहीं होता। उसमें विश्लेषणात्मिका वृत्ति का अभाव होता है। काव्य में हृदय तत्व की प्रधानता के कारण संश्लेषणात्मक रागात्मिका वृत्तियां ही प्रमुख होती हैं जो समष्टि में अभेद दृष्टि को जन्म देती है। `प्रसाद` के `कामायनी` महाकाव्य में हृदय पक्ष की अपेक्षा और

---

१ - काव्य कला तथा अन्य निबंध : पृष्ठ ४२।

२ - तदेव : पृष्ठ ३६।

बुद्धि की विगर्हणा की गयी है :-

' सिर चढ़ी रही पाया न हृदय
तू विकल कर रही है अभिनय ।'

काव्य को कला से श्रेष्ठ प्रतिपादित करते हुए वे कहते हैं कि जहां काव्य में भावना और अभिव्यंजना दोनों होते हैं वहीं कला में केवल अभिव्यंजना होती है ।

अरस्तू ने कला को अनुकरण माना है । ' प्रसाद ' जी ने अरस्तू के इस मत की भी समीक्षा प्रस्तुत की है -

' आध्यात्म का उससे सम्पर्क नहीं । ------ लोकोत्तर आनन्द की सत्ता का विचार ही नहीं किया गया'।

वस्तुत: ' प्रसाद ' जी ने अपनी सूक्ष्म निरूपिणी बुद्धि का परिचय देते हुए यहां एक महत्वपूर्ण विषय ' आनन्द ' की ओर इंगित किया है ।

' प्रसाद ' जी ने अपने ' स्कन्दगुप्त ' नाटक में काव्य की एक बहुत सुन्दर परिभाषा की है :-

' कविता वर्णमय चित्र है, जो स्वर्गीय भावपूर्ण संगीत गाया करती है । अन्धकार का आलोक से, असत् का सत् से, जड़ का चेतन से और बाह्य जगत का अन्तर्जगत से संबंध कौन कराती है, कविता ही न '[1] उपर्युक्त अवतरण में काव्य को वर्णमय चित्र कहा गया है जिसमें भावों की प्रधानता होती है । काव्य भावों से पूर्ण संगीत है । आगे काव्य की उपयोगिता का वर्णन है जो पाठक या श्रोता को एक प्रकाशपुंज लोक में पहुंचा देती है । काव्य बाह्य का अन्तर्जगत से संबंध कराता है । यहां अन्तर्जगत की बात करके प्रसाद जी ने छायावादी अन्तर्मुखीनता की ओर संकेत किया है । एक स्थल पर काव्य की विविधता

---

१ - ' स्कन्दगुप्त ', प्रथम अंक : पृष्ठ - २१ ।

प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं कि -

"काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है जिसका संबंध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है। यह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा है। ------। आत्मा की मनन शक्ति की वह असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है, काव्य में संकल्पात्मक मूल अनुभूति कही जा सकती है। कोई भी यह प्रश्न कर सकता है कि संकल्पात्मक मन की सब अनुभूतियाँ श्रेय और प्रेय दोनों ही से पूर्ण होती हैं, इनमें क्या प्रमाण है। किन्तु इसीलिए साथ ही साथ असाधारण अवस्था का भी उल्लेख किया गया है।" [१]

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट है कि काव्य में तीन बातें होती हैं:-

१ - काव्य में अनुभूति की प्रधानता होती है, तर्क या विज्ञान का नहीं। काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है। इसका संबंध विश्लेषण से नहीं, संश्लेषण से है, मस्तिष्क से नहीं हृदय से है। यहाँ "प्रसाद" जी ने काव्य को अनुभूति की मौलिक अभिव्यक्ति कहकर काव्य की अन्तर्मुखीनता का परिचय दिया है जो वस्तुत: सत्य है। विश्व साहित्य का समस्त उच्चकोटि का काव्य अनुभूति की मार्मिक अभिव्यक्ति है। बुद्धि - प्रसूत काव्य उससे निम्न कोटि का ही होगा। इस प्रकार यहाँ सच्चे काव्य के स्वरूप का सुष्ठुतर निरूपण किया गया है।

२ - उसमें (काव्य में) आध्यात्मिकता (श्रेय) और यथार्थ (प्रेय) का एक जैसा महत्व है। काव्य केवल प्रेयमयी रचना होने पर विज्ञान, इतिहास, अर्थशास्त्र आदि और कुछ हो जायेगा और केवल श्रेयमयी होने पर धर्म, आचारशास्त्र या और कुछ हो जायगा। अत: काव्य में श्रेय और प्रेय दोनों का संश्लिष्ट रूप होना ही श्रेयस्कर है। इसीलिए काव्य यथार्थ के भौतिक धरातल का संस्पर्श करता है जहाँ यथार्थ के कल्मष-कालुष्य का प्रक्षालन हो जाता है, असत् से सत्

---

१ - काव्य कला तथा अन्य निबंध : पृष्ठ ३८।

की ओर प्रगति होती है, तमसावृत जगत से एक ज्योतिर्मय जगत का संदर्शन होता है और मृत्यु से अमरता की ओर उपसरण होता है । इसी तथ्य का प्रतिपादन `प्रसाद' जी ने ऊपर की पंक्तियों में किया है ।

३ - कवि की अनुभूति आत्मा की असाधारणावस्था अर्थात् प्रतिभा से आलोकित रहती है । यहां काव्य में प्रतिभा का प्रमुख स्थान माना गया है । अनुभूति की अभिव्यक्ति प्रतिभा के अभाव में कदापि संभव नहीं है । कवि में काव्य-प्रतिभा का होना अनिवार्य है अन्यथा अभिव्यक्ति नहीं होगी । अनुभूति तो सभी प्राणियों को होती है, परन्तु प्रतिभा ही अनुभूति को सुन्दर काव्य में परिणत कर देती है । इस प्रकार जहां शास्त्रीय काव्यवादी (क्लैसिसिस्ट) प्रतिभा को ही सर्वोच्च आसन प्रदान करता है वहां छायावादी जी अनुभूति को । एक में बुद्धि का प्राधान्य होता है तो दूसरे में अनुभूति का, एक में प्रस्वेद (Perspiration) या साधारण अभ्यास का तो दूसरे में प्रेरणा (Inspiration) का । `प्रसाद' जी ने अनुभूति को प्रथम और प्रतिभा को उसका सहायक मानकर अत्यन्त परिपुष्ट व्याख्या प्रस्तुत की है । इस प्रकार `प्रसाद' जी ने काव्य की मार्मिक व्याख्या की है ।'[१]

परन्तु प्रसाद की इस काव्य परिभाषा की आलोचना भी हुई । `यह परिभाषा सर्वमान्य न होकर केवल व्यक्तिगत दृष्टिकोण को ही स्पष्ट करती है । काव्य को हम अनुभूति मात्र ही नहीं मान सकते । हमारे साहित्य-भंडार में भरा हुआ विशेषोक्ति, लक्षणा और अलंकार को लेकर चलने वाला समस्त काव्य, अनुभूति के रूप में नहीं है ----। अनुभूति संकल्पात्मक या विकल्पात्मक नहीं हो सकता । अनुभूति संकल्पात्मक होती ही है । अत: संकल्पात्मक शब्द व्यर्थ ही जान पड़ता है । `श्रेयमयी प्रेय ज्ञानधारा' भी सदा

---

१ - काव्यकला तथा अन्य निबंध : प्राक्कथन : पृष्ठ ५ आ

ही काव्य नहीं हो सकती । श्रेयमयी प्रेय अनुभूति धारा काव्य हो सकती है ।'[१]

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रसादकृत काव्य के स्वरूप की आलोचना 'अनुभूतिमात्र ही' कहकर की गयी है, जबकि 'प्रसाद' ने अनुभूति के अतिरिक्त प्रतिभा, श्रेय तथा प्रेय संयुक्त ज्ञानधारा को काव्य कहा है । आगे स्वयं आलोचक महोदय ने प्रकारान्तर से 'श्रेयमयी प्रेय अनुभूतिधारा' को काव्य माना है जो प्रसाद जी को भी इष्ट है ।

इस प्रकार यदि तत्वत: देखा जाय तो प्रसाद जी ने काव्य में अनुभूति तत्व को प्रथम और प्रतिभा को उसके बाद मानकर एक संतुलित दृष्टिकोण का परिचय दिया है । वे अतिवादी नहीं प्रतीत होते । न तो उनका झुकाव केवल अनुभूति की ओर है और न तो शुद्ध शास्त्रीय कवियों (क्लासिक पोयेट्स) की भांति बुद्धिवाद की ओर । उन्होंने काव्य के शुद्धस्वरूप की व्याख्या की है जो अनुभूतिजन्य होते हुए भी प्रतिभा का संस्पर्श पाकर सत्यं-शिवं-सुन्दरं की एक संश्लिष्ट ज्योति से पूर्ण हो अत्यन्त उदात्त एवं उच्च भावभूमि पर हमें पहुंचा देता है ।

अत: 'प्रसाद' का काव्य विषयक यह दृष्टिकोण मौलिक और मार्मिक है ।

'निराला' के विचार :

यद्यपि 'निराला' जी ने काव्य की कहीं भी स्पष्ट व्याख्या नहीं की है परन्तु उनके लेखों और प्रकीर्ण विचारों को अवलोकन करने से हम उनकी काव्य-विषयक अवधारणाओं से अवगत हो सकते हैं । उन्होंने जगत के नाना दृश्यों की स्वानुभूतिमयी

---

१ - हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास : डा० भगीरथ मिश्र : पृष्ठ ३६६ ।

अभिव्यक्ति को कवि का आदर्श माना है: -

"साहित्यिक संसार की अच्छी चीजों का समावेश अपने साहित्य में करते हैं और उनके प्राणों के रंग से रंगीन होकर वे चीजें साधारणों को भी रंग देती हैं।"[१] यहाँ "उनके प्राणों के रंग से रंगीन होकर" से तात्पर्य कवि या साहित्यकार की वैयक्तिक अनुभूतियों से है। काव्य में वैयक्तिक तत्व की प्रधानता होती है। "काव्य में यदि कोई कवि अपने व्यक्तित्व पर खासतौर से जोर देता है, तो उसे उसका अदाम्य अहंकार न समझकर, मेरे विचार से उसकी विशाल व्याप्ति का साधन समझना निरुपद्रव होगा।"[२] यहाँ कवि की वैयक्तिकता को उसका अहंकार न समझकर उसकी विशाल व्याप्ति का साधन कहा गया है, जो व्यष्टि का समष्टि में, विशेष का सामान्य में और व्यक्तिगत तत्व की लोक-सामान्य भावभूमि में परिणति है। यही कार्य एक आदर्श काव्य करता है जहाँ कवि के भाव सबके भाव हो जाते हैं और काव्य व्यक्ति, देश और काल की सीमाओं का अतिलंघन कर सार्वकालिक और सार्वदेशिक हो जाता है। काव्य का यही उदात्त तत्व है जो विश्व के महान साहित्यों की शाश्वत निधि है। बाल्मीकि, व्यास, कालिदास, तुलसीदास, टैगोर, शेक्सपियर, गेटे और स्लागल आदि विश्व साहित्य के ऐसे ही साहित्यकार हैं जिनकी निजी अनुभूतियाँ देश-काल की सीमाओं को तोड़कर युग-युग की निधियाँ हो गयी हैं। निराला जी भी कवि के व्यक्तिगत भावों के साधारणीकरण की बात कर इसी की ओर इंगित करते हैं जो वास्तव में एक महान उपलब्धि है।

"कवियों के हृदय - निर्गत कविता रूपी उद्गार में इतनी शक्ति होती है कि उसका प्रवाह जनता को अपनी गति की ओर खींच लेता है। कवि की सुझाई हुई बात जनता के चित्त में पैठ या बैठ जाती है, प्रतिकूल विचारों का बल घटा देती है। जनता प्राय: वही

---

१ - गीतिका : भूमिका: पृष्ठ - ५ ।

२ - चयन : पृष्ठ - ४८ ।

३ - निराला ग्रन्थावली : भाग १, प्रथम सं०, संवत् २०३०, पृष्ठ ४४८ ।

सम्मति सब मानती है जो कवि से प्राप्त होती है ।'[१] इस स्थल पर एक काव्य की सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की गयी है । काव्य या कविता कवियों के हृदय - निर्गत उद्गार हैं । वास्तुतः यह उद्गार कुछ और नहीं कवि की अनुभूति ही है । इन अनुभूतियों में वह शक्ति होती है जो पाठक या जनता को हठात् आकर्षित कर लेती है । इस प्रकार काव्य के हृदय - निर्गत उद्गारों की शक्ति है । जिसे कवि ने 'कल्पना के कानन की रानी' कहा है :-

'आओ, आओ, मृदुपद मेरे,
मानस की कुसुमित वाणी ।'

यहाँ कविता को कवि ने अपने मानस की कुसुमित वाणी कहकर स्वानुभूतितत्व पर बल दिया है ।

'साहित्य में भावों की उच्चता का ही विचार रखना चाहिए । भाषा भावों की अनुगामिनी है ।'[१] साहित्य या काव्य में भावों या स्वानुभूतियों की उच्चता यहाँ दर्शनीय है । 'वह (साहित्य) वहिर्जगत को अन्तर्जगत के साथ मिलाता है । उदाहरण के लिए भारत का ही बाहरी संसार लिया जाय । साहित्यिक कथन के अनुसार भारतीयों को भीतरी मनोभावों का ही बाहर यह विवादग्रस्त भयंकर रूप है । जिस बिगाड़ का अंकुर भीतर हो, उसका बाहरी सुधार बाहरी ही है, गंदगी पर इत्र का छिड़काव ----- मानसिकरोग मानसिक सुधार से ही छूट सकता है । साहित्य की व्यापक महत्ता यहीं सिद्ध होती है ।'[२] इस उद्धरण में काव्य की आन्तरिकता (अन्तर्मुखीनता) और महत्ता की ओर स्पष्ट निर्देश है । अरस्तू ने अपने काव्य शास्त्र में त्रासदी की रेचनशीलता (परगेशन या कैथार्सिस) की बात कही है और निराला जी को भी यही इष्ट है । काव्य या साहित्य की चिर नवीनता की बात करते हुए वे कहते हैं कि:- 'हवा रोज ताजी

---

१ - प्रबन्ध पद्म : पृष्ठ ~~२६, २६८~~ ~~और~~ २७२ ।

२ - प्रबन्ध - प्रतिमा : पृष्ठ २५८ ।

चलती है, आसमान हरवक्त नये रंग बदलता है, फिर भी लोग संस्कारों के अनुसार की हुई - सोची हुई बातों को ही लिखते, चली हुई राहें ही चलते हैं।`[१] काव्य में पिटी-पिटायी परिपाटी पर ही नहीं चलना चाहिए, उसमें नित्य नवीन उद्भावन हो, निराला जी यही चाहते हैं। इसीलिए वे साहित्य की मुक्ति की आकांक्षा करते हैं:-` साहित्यदायरे से छूटकर ही साहित्य है। साहित्य वह है जो साथ है, वह है जो संसार की सबसे बड़ी चीज है। साहित्य लोक से - सीमा से - प्रान्त से - देश से - विश्व से ऊंचा उठा हुआ है। इसीलिए वह लोकोत्तर आनन्द दे सकता है। लोकोत्तर का अर्थ है, `लोक`, जो कुछ देख पड़ता है उससे और दूर तक पहुंचा हुआ। ऐसा साहित्य मनुष्यमात्र का साहित्य है, भावों से, केवल भाषा का देशगत आवरण उसपर रहता है।`[२] यदि विचार किया जाय तो साधारण भाव भी सब साहित्य के एक ही होंगे, जबकि सब साहित्य के निर्माता मनुष्य ही हैं और एक ही प्रकृति उनके अन्दर काम कर रही है।`[३] साहित्य के उद्देश्यों के संबंध में वे कहते हैं - `साहित्य वह है जो मानव जाति का उत्थान करे।`[४]

कुल मिलाकर, निराला जी ने काव्य को कवि हृदय निर्गत उद्गार से अभिहित किया है। उसका संबंध व्यक्ति से नहीं समष्टि से है। कवि के वैयक्तिक भावों या अनुभूतियों का साधारणीकरण हो जाता है और काव्य निर्बन्ध हो जाता है। उसमें नित-नूतनता का समावेश होना आवश्यक है। छायावादी काव्य में प्राचीनता के बंधन तोड़ने की बात सर्वाधिक `निराला` ने ही की है। काव्य का लक्ष्य लोकोत्तर आनन्द प्रदान करना है और मानव जाति के उत्थान में ही उसका महत्व निहित है।

---

१ - प्रबन्ध पद्म : पृष्ठ १६, १६८ और १७२।
२ - प्रबन्ध पद्म : पृष्ठ १६, १६८ और १७२।
३ - प्रबन्ध प्रतिमा : पृष्ठ २५६
४ - चयन पृष्ठ : पृष्ठ १०३।

सुमित्रानन्दन पंत की विचारधारा :

'पल्लव' के 'प्रवेश' में यत्र-तत्र काव्य के स्वरूप के विषय में पंत जी ने अपने मत व्यक्त किए हैं। 'कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृत्कम्पन, कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होता है। जिसप्रकार नदी के तट अपने बंधन से धारा की गति सुरक्षित रखते - जिनके बिना वह अपनी ही बंधनहीनता में अपना प्रवाह खो बैठती है, उसी प्रकार छन्द भी अपने नियंत्रण से राग को स्पन्दन, कम्पन तथा वेग प्रदान कर, निर्जीव शब्दों के रोड़ों में एक कोमल, सजल कलख भर, उन्हें सजीव बना देते हैं। वाणी की अनियमित साँसे नियंत्रित हो जाती, तालयुक्त हो जाती, राग की असम्बद्ध झंकारें एक वृत्त में बंध जाती, उनमें पूर्णता आ जाती है।'[१] पुनश्च 'कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है। हमारे जीवन का पूर्ण रूप, हमारे अन्तरतम प्रदेश का सूक्ष्माकाश ही संगीतमय है, अपने उत्कृष्ट क्षणों में हमारा जीवन छन्दों में ही बहने लगता है, उसमें एक प्रकार की सम्पूर्णता, स्वरैक्य तथा संयम आ जाता है।'[२] कविता विश्व का अन्तरतम संगीत है, उसके आनन्द का रोमहास है, उसमें हमारी सूक्ष्मतम दृष्टि का मर्म प्रकाश है। जिस प्रकार कविता में भावों का अन्तरस्थ हृत्कम्पन अधिक गंभीर, परिस्फुट तथा परिपक्व रहता है उसी प्रकार छन्दबद्ध भाषा में भी राग का प्रभाव, उसकी शक्ति, अधिक जागृत, प्रबल तथा परिपूर्ण रहती है।'[३] 'कविता में भावों के प्रगाढ़ संगीत के साथ भाषा का संगीत भी पूर्ण परिस्फुट होना चाहिए तभी दोनों में संतुलन रह सकता है।'[४] उपर्युक्त समस्त उद्धरणों में काव्य की अन्तर्मुखीनता का निदर्शन है। काव्य भावों के प्रगाढ़ संगीत का नाम है। 'कविता हमारे प्राणों का संगीत है' कहकर पंतजी ने भी काव्य में अनुभूति तत्व को महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

---

१ - पल्लव : प्रवेश : पृष्ठ ३३-३४।

२ - पल्लव : प्रवेश : पृष्ठ ४१।

३ - ४ - पल्लव : प्रवेश : पृष्ठ ४१।

कविता में छन्दों के महत्व को भी वे स्वीकार करते हैं। इस प्रकार उन्होंने काव्य की मौलिक व्याख्या की है जो पूर्ववर्ती युगों की काव्य विषयक मान्यताओं से बिल्कुल भिन्न है। एक अन्यस्थल पर उन्होंने काव्य की एक नई परिभाषा दी है :- `साहित्य अपने व्यापक अर्थ में मानव जीवन की गंभीर व्याख्या है।`[१] पंत जी की यह उक्ति आंग्ल आलोचक और कवि मैथ्यू आर्नल्ड की काव्य विषयक मान्यता अर्थात् `काव्य मानव-जीवन की आलोचना है` के ठीक अनुरूप है। यहां पंतजी काव्य का संबंध मानव जीवन से जोड़ देते हैं। काव्य में तल्लीनता और तन्मयता भी होना चाहिए। पंत जी की उक्ति है :

`गान ही में रे मेरे प्राण,
अखिल प्राणों में मेरे गान।` (गुंजन)

पंत जी के अनुसार, काव्य में भावों की यह अभिव्यक्ति है जिसके क्षणों में कवि आत्म-विभोर, तल्लीन और तन्मय हो जाता है। तन्मयता के उन क्षणों में काव्य का अविरल प्रवाह अनजान रूप से होने लगता है :

`वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान,
उमड़कर आंखों से चुपचाप
वही होगी कविता अनजान।` (पल्लव)

पंत जी की यह कविता आंग्ल कवि वर्ड्सवर्थ की काव्य परिभाषा `तीव्रतम् अनुभूतियों के स्वतः प्रवाह से साम्य रखता है। काव्य में हृदयगत भावों के उद्‌गार होते हैं:

`कवि-उर में अगणित मृदुभाव
कूजते हैं विहगों से हाय
अरुण कलियों से कोमल घाव
कभी खुल पड़ते हैं असहाय।` (पल्लव)

---

१ - गद्य-पथ : पृष्ठ २०५।

उनके लिए कविता `उर की कंपन` है, `सुधि की दंशन` है :-

`आह, यह मेरा गीला गान
वर्ण-वर्ण है उर की कंपन
शब्द शब्द है सुधि की दंशन
चरण चरण है आह।` (पल्लव)

कविता कल्पनाओं की `कल-कल्पलता` है जिसमें `नवल भावनाओं का पराग` रहता है :-

`कह उसे कल्पनाओं की
कल कल्पलता, अपनाया।
बहु नवल भावनाओं का
उसमें पराग था पाया।` (पल्लव)

कविता हृदय की उद्गार है जिसमें `वन्य विहंगों के गान` सी स्वच्छंदता, `शिशुओं के शुचि अनुराग` सी पवित्रता भरी है:-

एक अस्फुट, अस्पष्ट, अगीत
सुप्ति की ये स्वप्निल मुसकान,
सरल शिशुओं के शुचि अनुराग
वन्य विहंगों के गान।` (पल्लव)

पंत जी ने अश्रु से ही काव्य का उद्भव माना है :-

`सिसकते हैं समुद्र से मन,
उमड़ते हैं नभ-से लोचन,
विश्ववाणी ही है क्रन्दन,
विश्व का काव्य अश्रुकन। (पल्लव)

मानव-उर के सुख-दु:ख संयुक्त भावों की अभिव्यक्ति काव्य है :-

' जीवन के सुख-दुख से सुरभित
कितने काव्य-कुसुम सुकुमार ।
- - - - - - - - - - -
विपुल कल्पना से भावों से
खोल हृदय के सौ-सौ द्वार ।' (पल्लव)

यहां यह ध्वनित होता है कि काव्य हृदय से निर्गत होता है और उसमें भाव और कल्पना मिश्रित होते हैं । कविता विविधता में व्याप्त अखण्ड एकता का स्वरूप सबके सामने रखती है :-

' जीवन मन के भेदों में सोई मति को
में आत्म एकता में अनिमेष जगाता' (उत्तरा)

कवि और कविता के लिए अपेक्षित गुणों की परिगणना करते हुये पंत जी एक स्थल पर लिखते हैं कि :-

' कवि, नवयुग की चुन भावराशि
नवछन्द, आमरण, रस - विधान
तुम बन न सकोगे, जन-मन के
जागृत भावों के गीत यान ।' (युगवाणी)

स्पष्टत: पंत जी के अनुसार, कविता विश्व के अन्तरतम का संगीत है, वह उर-उर की सुरभित वाणी है जिसमें जीवन की व्याख्या होती है । जैसे-जैसे मानव-मन में नवीन भाव उद्भूत होते हैं, वैसे ही वैसे कवि उन नवीन भाव राशियों को चुन-चुन कर नव छन्द, नवरस एवं नवीन अलंकारों से सजाकर अभिव्यक्त करता है । इस प्रकार काव्य में

नवीनता का नित्य समावेश होता है । यह काव्य के पुरातनता-विरोध की भावना भी अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्त हो रही है । पंत जी काव्य के -पिटे - पिटाये मार्ग पर नहीं चलना चाहते । नवीन भावों के साथ ही नवीन कल्पना को भी काव्य में महत्वपूर्ण स्थान देते हैं । डा० सुरेशचन्द्रगुप्त ने `पंत` की काव्य-विषयक मान्यताओं का आकलन यों किया है :-

जब कवि अपने युग की विशिष्ट विचारधारा को दृष्टि में रखते हुए काव्य के भाव पक्ष और कला पक्ष का नवीन रूप में संस्कार करता है, तभी उसकी कृतियां जनता को नवीन भाव-जागरण प्रदान करने में समर्थ हो पाती है ।`[१]

महादेवी वर्मा के विचार :

महादेवी जी एक कवियत्री होने के साथ ही एक सफल आलोचक का कर्तव्य भी निर्वाह करती रही हैं । उनके अनुसार,` काव्य (वास्तव में) मानव के सुख-दु:खात्मक संवेदनों की ऐसी कथा है, जो उक्त संवेदनों को सम्पूर्ण परिवेश के साथ दूसरे की अनुभूति का विषय बना देती है । परन्तु यह ग्रहण-संप्रेषण बुद्धि के सहयोग की भी विशेष अपेक्षा रखता है -------- वस्तुत: काव्य, बुद्धि के आलोक में, संवेदनों का सम्प्रेषण है । मानव के जितने सृजन हैं, कविता उनमें सबसे अधिक रहस्यमय सृजन है, जिसमें उसके अन्त:करण का संगठन करने वाले सभी अवयव मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार एक साथ सामंजस्यपूर्ण स्थिति में कार्य करते हैं ।`[२]

यहां संवेदना से तात्पर्य कवि की आत्मानुभूति से है । स्पष्ट है कि काव्य में अनुभूति तत्व को वे प्रधानता देती हैं और द्वितीय स्थान बुद्धि को जिसके आलोक में

---

१ - आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य-सिद्धान्त: डा० सुरेशचन्द्र गुप्त: पृष्ठ ३८४ ।

२ - संधिनी : चिंतन के क्षण : पृष्ठ ८ ।

संप्रेषण (Communication) होता है। बुद्धि के विषय में स्पष्टीकरण देती हुई वे कहती हैं कि :-

"बुद्धि संकल्प - विकल्प की नाप जोख और मूल्यांकन करने वाली निर्णयात्मिका वृत्ति है जो स्वयं सर्जनात्मिका न होने पर भी सर्जक तत्वों की रेखाओं को उद्भासित और इस प्रकार संचालित करती चलती है।"[१] तात्पर्य यह कि बुद्धि स्वयं सर्जनात्मिका शक्ति सम्पन्न नहीं होती, परन्तु उसका महत्व इस बात में है कि वह अनुभूतियों के जागृत होने पर उन्हें संचालित कर सफल अभिव्यक्ति प्रदान करती है। अतः काव्य में हृदय और बुद्धि दोनों तत्वों का संतुलन आवश्यक है :- "भावना, ज्ञान व कर्म जब एक सम पर मिलते हैं तभी युग - प्रवर्तक साहित्यकार प्राप्त होता है।"[२] यहां भावना, ज्ञान व कर्म तीनों का समन्वय आवश्यक है। काव्य में अनुभूति के साथ कल्पना का भी महत्व है। "उसके (कवि के) लिए लोक-समष्टि ही इष्ट है, परलोक के दान को निरीह भाव से अंगीकार कर लेना उसे अभीष्ट नहीं होता। वह लोक का निर्माण भी अपनी कल्पना के अनुरूप के चाहता है।"[३] कवि की सफलता चिन्तन - पुष्ट अनुभूति को वाणी प्रदान करने में ही। "कविता सबसे बड़ा परिग्रह है क्योंकि वह विश्वमात्र के प्रति स्नेह की स्वीकृति है। वह जीवन के अनेक कष्टों को उपेक्षा योग्य बना देती है क्योंकि उसका सृजन स्वयं महती वेदना है। वह शुष्क सत्य को आनन्द में स्पन्दित कर देती है क्योंकि अनुभूति स्वयं मधुर है।"[४] साहित्य मे अनुभवजन्य सहजता को विशेष महत्व मिलना चाहिए ---- क्योंकि अनुभूति को कल्पना से अधिक महत्व देती हैं। इसका स्वीकारात्मक उत्तर होगा, क्योंकि आत्माभिव्यक्ति के लिए अनुभूति तो प्राणतन्तु के समान हीं।[५]

---

१ - संधिनी : चिन्तन के क्षण : पृष्ठ ७।
२ - ४ - पथ के साथी : पृष्ठ ८, २५ और ६५-६६।
५ - आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य - सिद्धान्त : डा० सुरेशचन्द्र गुप्त : पृष्ठ ४०६ और ४१०।

इस प्रकार महादेवी जी काव्य में अनुभूति तत्व को प्राणतत्व मानती हैं जैसा कि पूर्वोक्त तीनों कवियों ने कहा है। अनुभूति के बाद ही कल्पना की बारी आती है, यद्यपि वे इसका भी मोह नहीं छोड़ सकी हैं :-

" वस्तुत: उन्होंने अनुभवको प्रधान मानने पर भी कल्पना को काव्य के स्वस्थ विकास में सहायक माना है।"[१]

डा० रामकुमार वर्मा के विचार :

वर्मा जी एक छायावादी कवि होने के साथ ही कुशल समीक्षक भी हैं। उन्होंने कविता की परिभाषा इस प्रकार की है:-

" आत्मा की गूढ़ और छिपी हुई सौन्दर्यराशि का भावना के आलोक से प्रकाशित हो उठना ही कविता है।"[२]

यहां पर कविता को अप्रत्यक्ष रूप से अन्तर्मुखी की अभिव्यक्ति माना है। कविता को आत्मा की सौन्दर्यराशि कहा गया जो गूढ़ और छिपी रहती है और यह भावनाओं (अनुभूति) के आलोक से चमक उठती है या प्रकट होती है या अभिव्यक्त होती है। वस्तुत: एक छायावादी कवि के ये उद्गार तद्युगीन काव्य-मान्यताओं से भिन्न नहीं दृष्टिगोचर होते हैं।

आंग्ल रोमांटिक कवियों की दृष्टि :

विलियम वर्ड्सवर्थ - आंग्ल साहित्य में अठारहवीं सदी की रीतिवादी (क्लासिकल) युग के बाद रोमांटिक युग का आगमन होता है जिसके अमर कवि वर्ड्सवर्थ हैं। उन्होंने

१ - आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य-सिद्धान्त : डा० सुरेश चन्द्र गुप्त: पृष्ठ ४०६ और ४१० ।

२ - आधुनिक कवि : भाग ३, भूमिका : पृष्ठ ६ ।

अपने ` लिरिकल बेलड ' में काव्य की एक नवीन व्याख्या प्रस्तुत की । पोप और ड्राइडन की कठोर नियम बंधन से युक्त काव्य मान्यता के विपरीत उन्होंने कविता को सशक्त आवेगों का स्वतःस्फूर्त प्रवाह (Spontaneous overflow of powerful feeling) माना । काव्य के स्पष्ट स्त्रोत उन्मुक्त और स्वतःस्फूर्त रूप से अवश्य प्रभावित होने चाहिए - वे कृत्रिमतापूर्वक बनाए गए पाइपों से नहीं प्रभावित हो सकते ।[१] आगे उसने कहा कि कविता कवि के हृदयस्थ अति तीव्र भावों का उसने शान्त क्षणों में संस्मरण है (It is emotion recollected in Tranquility) इसी बात को वह अपनी एक कविता ` डेफोडिल्स ' में कहता है । जब वह अकेले अवारा बादल की तरह प्रकृति के निभृत कोने में घूम रहा था तो डेफोडिल्स पुष्पों को देखकर घर लौटता है और शयन - बेला के आगमन पर अपने पर्यंक पर पड़ा हुआ वह दिन के अनुभूत क्षणों को स्मृति पटल पर लाता है तो डेफोडिल्स नाम्नी कविता का प्रणयन कर डालता है :-

"For oft when on my couch I lie
In vacant or in pensive mood
They flash upon that inward eye
Which is the bliss of solitude
And then my heart with pleasure fills
And dances with the daffodils."[2]

कवि की इस व्याख्या को हम इस प्रकार देख सकते हैं :-

१ - कविता तीव्रतम अनुभूति (Powerful feeling) है ।

२ - यह अनुभूतियों का स्वतः या प्रकृत् उत्प्रवाह (spontaneous overflow) है।

३ - कविता तीव्र अनुभूतियों के स्वतः प्रवाह का शान्त क्षणों में संस्मरण है । इसके अतिरिक्त उसने कविता में कल्पना का भी उपयोग करने की भी बात कही है ।[३] इस

---

1. The clear springs of poetry must flow freely and spontaneously - it can not be made to flow through artificially laid pipes" Lyrical Ballad: William Wordsworth: (A Book of Eng. Lit. Vol II, pg. 56. Macmillan Company, New York,1947)
2. Golden Treasury : Daffodills: page 260.
3. Lyrical Ballad: William Wordsworth: (A book of Eng. Lit. Voll. II, pg. 49. Macmillan Company, New York, 1947).

प्रकार वर्ड्सवर्थ ने अनुभूति के बाद कल्पना तत्व पर बल दिया है।

वर्ड्सवर्थ अपनी इस काव्य परिभाषा का अक्षरशः व्यावहारिक परिपालन नहीं कर सके, परन्तु इतना तो निश्चित ही है कि उसने अपने युग में एक क्रान्तिकारी काव्य परिवर्तन किया। उसने अपने पूर्ववर्ती समस्त काव्य मान्यताओं को उखाड़ फेंका और शास्त्रीय युग के पाण्डित्य का डटकर विरोध किया।[1]

इस प्रकार वर्ड्सवर्थ ने काव्य का संबंध अनुभूति (हृदय) से जोड़ दिया। यद्यपि कि उसकी यह मान्यता कि काव्य तीव्र भावों की शान्ति के क्षणों नवीन और स्वीकृत है कि उन्हें दाद नहीं दी जा सकती। वर्ड्सवर्थ ने अपनी मौलिकता का परिचय ` लिरिकल बेलड ` की भूमिका में प्रस्तुत कर एक युगान्तर उपस्थित किया। लगता है कि हिन्दी के छायावादी कवि भी अंग्रेजी की रोमांटिक कविता से ही नहीं अपितु काव्य विषयक सिद्धान्तों के प्रतिपादन में भी वर्डस्वर्थ आदि का अनुसरण किया है क्योंकि उनके पूर्व लिखित विचार वर्ड्सवर्थ के विचारों के अनुरूप हैं।

एस० टी० कालरिज के विचार :-

रोमान्टिक कवि, दार्शनिक एवं आलोचक कालरिज मौलिकता और गाम्भीर्य की दृष्टि से अंग्रेजी साहित्य में मूर्धन्यस्थान रखते हैं। आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि और आलोचनात्मक प्रतिभा में वे अपना शानी नहीं रखते हैं। दर्शन और काव्य का अविच्छिन्न संबंध मानते हुए उसने अपने काव्य-सिद्धान्तों की स्थापना की। कालरिज ने कवि के लिए नियमों के पालन को महत्वपूर्ण न मानकर मौलिकता तथा प्रतिभा को आवश्यक माना है।

---

1. "All conventions of pedantry must be discarded in order to evolve the true poetic style". Lyrical Ballad: Wordsworth: (A book of Eng. Lit. Vol. II; pg. 52. Macmillan Company, New York, 1947).

यहाँ यह कहना समीचीन होगा कि इस प्रकार की मान्यता के पीछे कालरिज की स्वच्छन्दतावादी प्रवृति काम कर रही थी जो अठारहवीं शताब्दी के कृत्रिम एवं रूढ़ काव्य मूल्यों के प्रति विरोधी प्रतिक्रिया का परिणाम थी। अपने प्रसिद्ध आलोचनात्मक ग्रन्थ ` बायोग्राफिया लिटरेरिया ` में उन्होंने नवीन काव्य मान्यताओं को जन्म दिया। उनके अनुसार, ` काव्य विज्ञान का विलोम है, जिसका तात्कालिक उद्देश्य आनन्द है, सत्य नहीं। `[1] विज्ञान में बाह्य एवं स्थूल का वर्णन होता है, उसमें जीवन के स्थूल सत्यों का वर्णन होता है। काव्य में स्थूल से परे सूक्ष्म का वर्णन होता है। इस प्रकार कालरिज ने काव्य की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति पर जोर दिया। वर्ड्सवर्थ की भांति सशक्त भावनाओं को उसने महत्व तो दिया किन्तु काव्य प्रक्रिया में सर्वोपरि स्थान प्रदान किया रचनात्मक कल्पना (creative imagination) को। इस प्रकार काव्य में भाव और कल्पना पर बल देकर कालरिज ने काव्य दृष्टि को एक नयी दिशा प्रदान की। ` बायोग्राफिया लिटरेरिया ` के तेरहवें अध्याय में कल्पना और फैंसी का विश्लेषण किया गया है।

कॉलरिज ने काव्य में भाव और कल्पना की स्वीकृति के साथ ही यह भी कहा कि काव्य में छन्द में भावातिरेक की स्थिति से संबंधित है। अतः छन्द भावों का स्वाभाविक विकास होना चाहिए। दूसरे, छन्द काव्यगत सामान्य अनुभूति को अधिक रमणीय बनाता है। इसके साथ ही छन्द के लिए ` वस्तु ` का उपयुक्त विधान आवश्यक है। अतः छन्द से आनन्द तो प्राप्त होता है, पर तभी जब वह उपयुक्त वस्तु के साथ हो। सारांशतः छन्द कविता के लिए अनिवार्य है।

स्पष्ट है कालरिज ने काव्य में भावों की प्रकृतता के साथ छन्दों की स्वाभाविकता की ओर निर्देश दिया। काव्य में अनिवार्य है। इस प्रकार कालरिज ने रोमांटिक काव्य धारा में महान परिवर्तन किया।

---

1. 'Poetry is the anti-thesis of science, having for its immediate object pleasure, not truth. "Biographia Literatia, chapter XIV (A book of Eng. Lit. Vol II, page 59).

पी० बी० शेली के विचार :

शेली के काव्य - विषयक विचार मुख्यत: `डिफेन्स आफ पोयेट्री` में और इसके अतिरिक्त यत्र तत्र उसके पत्रों और गद्य रचनाओं मे मिलते हैं। कालरिज की भांति शेली ने काव्य को कल्पना की अभिव्यक्ति माना है।[१] शेली ने भी कालरिज की तरह काव्य का प्रयोजन स्थायी और सार्वभौम आनन्द देना मानते हैं। मानव प्रकृति की निर्मिति कुछ इस प्रकार की है कि दु:ख में भी हमें उत्कृष्टतम आनन्द की उपलब्धि होती है। दु:ख का आनन्द सुख के आनन्द से अधिक मधुर होता है। इसी की अभिव्यक्ति उन्होंने अपनी प्रसिद्ध रचना `स्काईलार्क` में की है - `हमारे मधुरतम गान वे हैं जो हमसे अत्यन्त दु:खपूर्ण विचार को कहे।`[२] यहां गान का तात्पर्य कविता से है। शेली के अनुसार, सुन्दरतम् कविता वह है जिससे दु:खपूर्ण विचार अर्थात् हृदयस्थ भावों का प्रवाह हो। सम्भवत: शेली ने यहां अनुभूति पर ही बल दिया है। शेली का `स्काई लार्क` कोई पक्षी विशेष न होकर छायावादी कवि का प्रतीक है। इस पक्षी की जिह्वा से एक सामंजस्यपूर्ण पागलपन (हार्मोनियस मेडनेस) प्रवाहित होता है।[३] यह सामंजस्यपूर्ण पागलपन और कुछ नहीं कवि की प्रतीक प्रेरणा (इंस्पिरेशन) के क्षणों की आवेगपूर्ण वाणी है जो कविता बन कर निसृत होती है। `डिफेन्स आफ पोयेट्री में शेली ने प्रेरणा (इंस्पिरेशन) के महत्व पर पर्याप्त बल दिया है। वह विश्वास करता है कि काव्य प्रक्रिया का उद्‌भव उन कतिपय उपवाद स्वरूप क्षणों में होता है जिनमें कवि के विचार और अनुभूतियां जो अदृश्य रूप से उठते हैं, आत्मा तक पहुंचते हैं।[४] कवि अनुभूति के क्षणों में विचारों में खो जाता है।

---

1. Poetry, in general sense, may be defined as the expression of the imagination: Defence of Poetry: Shelley.

2. Our sweetest songs are those that tellest us of saddest thoughts sky lark: Shelley: Golden Treasury, pg.

3. Such harmonious madness
   From thy lips would flow
   The world should listen them, as I am listening, " Ibid.

4. Like a poet hidden, in the light of thought : Ibid.

शेली ने आनन्द को काव्य का साध्य और ज्ञान को अतिरिक्त उपलब्धि माना है। शेली का यह आनन्द अनिवार्य रूप से दुःखमूलक ही नहीं वरन् इसका संबंध प्रेम और मित्रता के आनन्द, प्रकृति सौन्दर्य से उत्पन्न समाधिगत आनन्द, कल्पना के आनन्द और काव्य रचना के आनन्द सभी से है। शेली ने काव्य को कल्पना की अभिव्यक्ति माना है।

इस प्रकार काव्य मानव-कल्पना से उद्भूत होकर नूतन आनन्द से पूर्ण विचारों के द्वारा पाठकों की कल्पना-परिधि का विस्तार कर देता है और यह विस्तृत कल्पना अन्य विचारों को स्वयं ग्रहण कर लेती है। चूंकि काव्य का हेतु, शेली के अनुसार, प्रेरणा या कवि - शक्ति है, अतः कवि उत्कृष्टतम् शक्ति सम्पन्न दार्शनिक होता है, वह जीवन-कला का उन्नायक होता है और विश्व का नियम विधायक होता है।"[१]

कुलमिलाकर, काव्य कल्पना की अभिव्यक्ति है। उसके पश्चात् अनुभूति का महत्व है। काव्य में कल्पना और अनुभूति से आनन्द की उपलब्धि होती है जो काव्य का साध्य है। शेली ने प्रेरणा (Inspiration) को काव्य-हेतु माना है। शेली का विश्वास है कि काव्य में छन्द की आवश्यकता है, परन्तु वह यह नहीं कहता कि कोई महान कवि छन्दों के बन्धन में बंध जाय। वह बंधन विहीन छन्द का पक्षपाती है। शेली काव्य में उपदेशवृत्ति से घृणा करता है।

<u>जान कीट्स</u> :

कीट्स एक जागृत कलाकार था। अपने काव्य-काल के प्रारम्भ में उसने दो कविताओं (I stood tip-toe upon a hill) और Sleep and poetry") की रचना की जिनमें उसने अपने काव्य-विषयक विचारों को व्यक्त किया। उपरोक्त प्रथम कविता में वह कहता है कि प्रकृति (नेचर) ही काव्य का शाश्वत स्त्रोत है। उसके इस विचार का पल्लवन उसकी दूसरी कविता में होता है, जहां

१- पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त : डा० जगदीश प्रसाद मिश्र:प्र०सं० १६७६, पृष्ठ : ११।

वह कविता को निद्रा से ऊंचा सिद्ध करता है और उसे सुख के क्षणों का स्वाभाविक गीत मानता है। कीट्स ने कविता को वह शक्ति माना है जो समस्त स्थानों का सुन्दर दृश्य उपस्थित करती है।[1] और कवि को समस्त प्रकार के दृश्य, स्मृत अथवा कल्पित सौन्दर्य-वर्णन के लिए प्रेरित करती है। कीट्स कविता में कल्पना की सर्वोच्चता की भी बात करता है क्योंकि कल्पना के ही द्वारा काव्य प्रतिभा को समस्त चीजें ज्ञात और अभिव्यक्त होती हैं। "स्लीप और पोयेट्री" में उसने कविता को निर्मल प्रकाश की वर्षा, सर्वोच्चशक्ति और अर्द्धनिद्रित शक्ति कहा है।[2] इसका तात्पर्य है कि कविता में शक्ति, सारल्य (इंज), स्वाभाविकता (naturalness), निद्रा तुल्य कोमलता (A softness as of sleep) एवं तनाव-मुक्ति आदि गुण होते हैं। पुनः उसने कविता को एक मित्र बतलाया है जो व्यक्ति की चिन्ताओं का शमन करके उसके विचारों को ऊंचा उठाती है।[3] इन्डिमियन (Endymion) कविता के प्रणयन के पश्चात् उसने प्रकाशक को लिखे गए एक पत्र में अपने विचारों को व्यक्त किया है कि यदि कविता वृक्ष के पत्रों की तरह स्वाभाविक रूप से न निकले तो उससे अच्छा है कि वह उद्भूत ही न हो:-

" Another axiom - that if poetry comes not as naturally as the leaves to a tree, it had better not come at all".

कविता में ऊंची से ऊंची कल्पना का आधार सत्य ही होता है। सत्य से परे कवि कोरा स्वप्न दृष्टा होता है और कविता के महान आदर्शों को पूरा नहीं कर सकता। सत्य से कल्पना की शत्रुता नहीं है। कल्पना रहित सत्य, कुत्सित वास्तव (vulgar realism) या यांत्रिक सत्य (mechanical realism) कहलाता है। कल्पना और सत्य का विशुद्ध संयोग कविता है। वह अपनी पूर्ण स्थिति पर पहुंचकर शिव बन जाती है। इस स्थिति में सौन्दर्य (Beauty), कल्पना

---

1. The fair vision of all places : Sleep and poetry: J. Keats, (A book of Eng. Lit. Vol. II, pg. 319).

2. A drainless shower
of light is poetry ; 'tis the supreme power;
'Tis might half-slumbering on its own right arm.
Sleep and Poetry: J. Keats, (A book of Eng. Lit. Vol. II, pg. 321).

3. Ibid.

और सत्य (Truth) एक हो जाते हैं। यही तथ्य उसकी एक कविता से ध्वनित होती है।[१] इस स्थिति तक पहुंचने के लिए कवि को अधिकाधिक नि:स्व होना पड़ेगा। नि:स्व(selfless) होने की परिणति निषेधात्मक क्षमता (Negative capability) के द्वारा हो सकती है, जिसके विषय में कीट्स कहता है कि :-

'थोड़ी देर के लिए उद्वेग सुप्त हो जाते हैं, शरीर शान्त हो जाता है, तात्कालिक आग्रहों की क्रिया से मुक्त मानस मानवी अनुभवों के क्षेत्र के ऊपर विशुद्ध भाव-प्रवण मुद्रा में सालस विचरण करता है। यह अवस्था अपनी पूर्णता में तभी आ सकती है जबकि सहज व्यापकता की मंजिल पर, कायिक सत्य की वेदिका की उपलब्धि हो जाए।'[२] प्रो० मिडल्टन मरी ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'कीट्स एण्ड शेक्सपीयर' में लिखते हैं कि कीट्स के अनुसार कविता कवि के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की स्वत:पूर्ण अभिव्यक्ति है। कीट्स के अनुसार कवि वह समग्र व्यक्ति है जो हृदय, बुद्धि और आत्मा में विच्छिन्नता नहीं सहन कर पाता। मिल्टन वह महान कवि है जिसमें यह विच्छिन्नता है। विशुद्ध कविता जीवन की आज्ञाकारिणी होती है। शेक्सपीयर की कविता जीवन में जीवन-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करती है।

निष्कर्षत: कीट्स की काव्य-धारणाओं में उसके स्वत: स्फुरण तत्व पर विशेष बल है। शेली की भांति कीट्स भी काव्य में कल्पना को सर्वोच्च महत्व देता है। इसके अतिरिक्त आदर्श कवि में हृदय, बुद्धि और आत्मा में संतुलन होना आवश्यक है।

---

1. Beauty is Truth, Truth Beauty
, Tis all ye know on earth and ye need to know.
(Ode to a Grecian urn : J. Keats).

२ - पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त : डा० जगदीश प्रसाद मिश्र, पृष्ठ १२।

निष्कर्ष :

अंत में छायावादी कवियों, आलोचकों और आंग्ल कवियों के मतों का समवेत रूप से आकलन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि छायावाद के अनुसार कविता कवि की तीव्रतम अनुभूति के क्षणों की स्वत:स्फूर्त निर्बंध भावोच्छ्वासों की वह स्वच्छन्द कलागत अभिव्यक्ति है जिसमें कल्पना के सहारे कवि की अहंकृति की झंकृति संसृति में होने लगती है - उसका व्यक्तिवाद दर्शन के सहारे विश्ववाद में परिणत होकर एक उदात्त अनिर्वचनीय सौन्दर्यमय, आनन्दलोक की सृष्टि करती है। इस प्रकार छायावादी कविता में अनुभूतियों की तीव्रता होती है और उनका स्वत: स्फूर्त प्रवाह होता है। वे स्वत प्रसूत रूप से उसके हृदय के अन्तरन् से स्रोत के रूप में उमड़ पड़ते हैं और साथ ही अपनी अनुभूति के अनुरूप भाषा भी लेते आते हैं, इसके लिए कवि को परिश्रम नहीं करना पड़ता। यौवन जब उमड़ता है तो अपनी अभिव्यक्ति के लिए अंग-प्रत्यंगों की कांट-छांट साथ ही लिए आता है।------------- बसंत के आगम परबसंत श्री साथ ही चलती है। उसी तरह आन्तरिक ज्योति अपनी अभिव्यक्ति की भाषा को साथ लिए आती है। गान आह से निकलता है और आंखों से निकलकर कविता चुपचाप बह जाती है। इस मनोवृत्ति से प्रसूत कविता रोमांटिक होगी, उसमें उमड़न होगी, वेग होगा, प्राणों की आकुलता होगी, पर्वतों को गिरा देने की शक्ति होगी, स्वच्छन्दता होगी और सबसे बड़ी चीज होगी कवि की आंतरिक प्रेरणा जो महान कविता का मूल तत्व है और जिसके बिना कविता की रचना हो ही नहीं सकती। इस कविता में बोधातीत सत्य के प्रति संकेत होगा इसमें दार्शनिकता का पुट होगा और नाम रूपात्मक जगत की विविध लीलाओं के पीछे छिपकर बैठे हुए डोर हिलाने वाले सूत्रधार की खोज होगी, यह कविता रहस्यवाद लिए होगी, प्रत्येक आश्चर्यजनक और साहसिक कार्यों के प्रति इसमें आग्रह होगा, अतीत की गौरव-गाथा के प्रति इसमें दिलचस्पी होगी।" [१]

---

१ - रोमांटिक साहित्य शास्त्र: देवराज उपाध्याय, पृष्ठ १६।

अतः छायावादी कविता में अनुभूति और कल्पना के अतिरिक्त विश्वमानवतावाद, युग चेतना की अभिव्यक्ति, सांस्कृतिक सौन्दर्य, आत्माभिव्यक्ति और स्वाभाविक सात्विकता को ग्रहण करने का भी आग्रह है। इस कविता में अतीत प्रेम, रहस्यवाद की भावना निहित है। रहस्यवाद के कारण ही इसमें जिज्ञासा और कौतूहल तत्वों का प्रवेश होता है। इस कविता में स्वच्छन्दता पर विशेष आग्रह है। भावों की स्वच्छंदता के साथ ही यहां कलागत अर्थात भाषा, छन्द और अलंकार आदि की स्वच्छन्दता भी अपेक्षित है। अपनी इसी स्वच्छन्दता मनोवृत्ति के कारण यह विद्रोहमयी भी हो गयी है। इस विद्रोह के भी विधेय और निषेध दो पक्ष हो जाते हैं। विधेय पक्ष के अन्तर्गत एक ओर प्रकृति प्रतीकों के माध्यम से नूतनता के प्रति मोह प्रकट किया गया है और दूसरी ओर नवमूल्यों और आदर्शों की स्थापना की कामना व्यक्त हुई है। निराला और पंत की कविता में नूतन के प्रति मोह प्रकृति प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ। निषेध पक्ष में विध्वंस की अनुगूंजे और रूढ़ि-विनाश की भावना पंत और निराला दोनों में है। निराला की भणिति है :-

> 'गरज गरज घन अंधकार में गा अपने संगीत,
> बन्धु वे - बाधा बन्ध-विहीन
> आंखों में नवजीवन की तू अंजन लगा पुनीत
> बिखरझर जाने दे प्राचीन।' (अनामिका : पृष्ठ ६७)

पंत जी कहते हैं :-

> 'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र
> हे स्त्रस्त ध्वस्त, हे शुष्क जीर्ण।' (युग पथ : प्रथम भाग : पृष्ठ ४१)

इस प्रकार छायावादी कविता में अनुभूतियों की तीव्रता, कल्पना-छलन, अतीत - प्रेम और भविष्य की स्वर्णाशा, नैराश्य, सौन्दर्य-प्रेम, बन्धन-विद्रोह, निर्माण और विध्वंस के उदात्त स्वर, सांस्कृतिक सौन्दर्य, विश्वमानवतावाद, भावानुगामिनी भाषा, नवीन अलंकार, छन्दों की मुक्तता, लक्षणिकता और प्रतीकात्मकता सभी निहित हैं।

'सब मिलाकर छायावाद के कवियों ने पूर्ववर्ती काव्य-युग की अपेक्षा अंतरंग सौन्दर्य पर अधिक बल देते हुए काव्य के सूक्ष्म मूल्यों की प्रतिष्ठा का अत्यन्त सफल प्रयत्न किया है।'[१]

ख - काव्य के उपादान

द्विवेदी-युगीन काव्य दृष्टि का संक्षिप्त निरूपण करते हुए हमने अवलोकन किया है कि उक्त काल के उत्तरार्द्ध में काव्य एक नवीन मोड़ ले रहा था, उसकी इतिवृत्तात्मकता, अन्तर्मुखता में शनैः शनैः परिणत हो रही थी। छायावाद युग में आकर वह नितान्त अन्तर्मुखी हो उठी। उसने स्थूल परिवेश का परित्याग कर सूक्ष्म का आलिंगन किया और परिणामतः इस प्रवृत्ति का प्रभाव काव्य के समस्त क्षेत्रों पर पड़ा। पिछले अध्याय में हमने यह भी अवलोकन किया कि कविता का स्वरूप भी इस अन्तर्मुखी सूक्ष्मता से पूर्ण रूपेण प्रभावित हुआ। काव्य अनुभूतियों का स्वतः प्रवाह बन गया। इसी प्रकार काव्य के स्वरूप परिवर्तन के समान ही काव्य के उपादान भी बदले।

'प्रसाद' की धारणा :- ✓

छायावादी कवियों में सर्वश्रेष्ठ जयशंकर 'प्रसाद' जी ने काव्य के उपादान के विषय में अपना अभिमत व्यक्त किया है। उन्होंने काव्य में सत्य, शिव और सुन्दर तीनों के महत्व को समान रूप से स्वीकार किया है। सत्य के विषय में

---

१ - आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त : डा० सुरेशचन्द्र गुप्त: पृष्ठ ४५१ ॥

वे कहते हैं कि :-

' सत्य की उपलब्धि के लिए ज्ञान की साधना प्रारम्भ होती है। - - - - - - - यह सत्य प्राकृतिक विकृतियों में, जो परिवर्तनशील होने के कारण अमृत नाम से पुकारी जाती है, ओत-प्रोत है। - - - - - - - - सत्य विराट है, उसे सहृदयता द्वारा ही हम सर्वत्र देख सकते हैं। उस सत्य के दो लक्षण बताए गये हैं - श्रेय और प्रेय। - - - - - - - काव्य में श्रेय और प्रेय दोनों का सामंजस्य होता है। - - - - - - काव्य या साहित्य आत्मा की अनुभूति का नित्य नया रहस्य खोलने में प्रयत्नशील हैं। - - - - - - - इसलिए कविता को आत्मा की अनुभूति कहते हैं।'[१] काव्य में सत्य के स्वरूप की व्याख्या उन्होंने ' कामायनी ' की भूमिका में दी है :-

' आज हम सत्य का अर्थ घटना कर लेते हैं। तब भी उसके तिथिक्रम मात्र से संतुष्ट न होकर, मनोवैज्ञानिक अन्वेषण के द्वारा इतिहास की घटना के भीतर कुछ देखना चाहते हैं। उसके मूल में क्या रहस्य है। आत्मा की अनुभूति। हां, उसी भाव के रूप ग्रहण की चेष्टा सत्य या घटना बनकर प्रत्यक्ष होती है। फिर भी ये सत्य घटनाएं स्थूल और क्षणिक होकर मिथ्या या अभाव में परिणत हो जाती है। किन्तु सूक्ष्म अनुभूति या भाव, निरन्तर सत्य के रूप में प्रतिष्ठित रहता है, जिसके द्वारा युग-युग के पुरुषों की और पुरुषार्थों की अभिव्यक्ति होती रहती है।'[२] इस प्रकार ' प्रसाद ' काव्य में सत्य के स्थान को महत्व देते हैं जो सूक्ष्म अनुभूति बनकर आता है। काव्य में सत्य की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त सौन्दर्य की स्वीकृति भी ' प्रसाद ' जी अंगीकार करते हैं। ' ग्रीस द्वारा प्रचलित पश्चिमी सौन्दर्यानुभूति बाह्य को, मूर्त को विशेषता देकर उसकी सीमा में ही पूर्ण बनाने की चेष्टा करती है और भारतीय विचारधारा ज्ञानात्मक होने के कारण मूर्त और अमूर्त का भेद हटाते हुए बाह्य और आभ्यन्तर का एकीकरण करने का प्रयत्न करती है। सौन्दर्य की यह स्पष्ट अनुभूति उसे सत्य की ओर

---

१ - काव्यकला तथा अन्य निबंध : पृष्ठ ३७।
२ - कामायनी: आमुख : पृष्ठ ४।

प्रेरित करती है और उसका ज्ञानात्मक रूप शिव से मण्डित है । अत: सिद्ध है कि उन्होंने काव्य में सत्य, शिव और सुन्दर के समावेश की एक जैसी कामना की है ।

'प्रसाद' जी ने काव्य में कल्पना तत्व को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया है । 'कल्पना' को काव्य का आवश्यक उपादान मानकर उन्होंने 'कामायनी' के आमुख में लिखा है :-

'इन्हीं सबके आधार पर 'कामायनी' की कथा सृष्टि हुई है । हां, 'कामायनी' की कथा - श्रृंखला मिलाने के लिए कहीं-कहीं थोड़ी बहुत कल्पना को भी काम में ले आने का अधिकार भी मैं नहीं छोड़ सका हूं ।'[१] कल्पना के विषय में वे कहते हैं :-

'हे, कल्पना सुखदान
तुम मनुज जीवनदान
तुम विशद व्योम समान ।'[२]

'कामायनी' में कल्पना के महत्व को स्वीकार करते हुए वे कहते हैं कि :-

'आहा कल्पना का सुन्दर यह
जगत मधुर कितना होता ।
सुख-स्वप्नों का दल छाया में
पुलकित हो जगत सोता । (कामायनी: आशा)

प्रसाद जी अपने काव्य में कल्पना का समावेश तीन कारणों से करते हैं । प्रथमत: उससे रस - सृष्टि में सहायता मिलती है । दूसरे वह घटनान्विति में सहायक होती है । तृतीयत: वह पात्रों के व्यक्तित्व के विकास का अवसर प्रदान करती है । इन तीनों के

---

१ - कामायनी : आमुख : ८ ।
२ - छायावाद और महादेवी : डा० नन्द कुमार राय : पृष्ठ ७७ ।

अतिरिक्त काव्य इतिवृत्तात्मक होने से बच जाता है। द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता इसी कल्पना विहीनता की ही देन थी। कल्पना के ही बल पर कवि मूर्त का अमूर्तन और अमूर्त का मूर्तन करता है।

इस प्रकार 'प्रसाद' जी ने काव्य के तत्वों में सत्य, शिव, सुन्दर के समन्वय के साथ ही अनुभूति और कल्पना को भी नहीं छोड़ा है। वे काव्य को 'आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति मानते ही हैं। उनके काव्य में इसी तत्व की प्रधानता है।

'निराला' की धारणा :

निराला जी ने काव्य में सत्य, शिव और सुन्दर के समन्वय में ही उसकी पूर्णता माना है :-

'कितने ही भाव रसाभाव पुराने नेर
संसृति की सीमा के अपार पार जो गये
गढ़ा इन्हीं से यह तन
दिया इन्हीं से जीवन
देखे हैं स्फुरित नयन इन्हीं से
कवियों ने पर कान्ति
दी जग को चरम शान्ति
की अपनी दूर भ्रान्ति इन्हीं से।' (अनामिका : पृष्ठ १४२।

सत्य, शिव और सुन्दर के अतिरिक्त उन्होंने काव्य में भाव या अनुभूतियों को बहुत अधिक महत्व दिया है :-

'साहित्य में भावों की उच्चता का ही विचार रखना चाहिए। भाषा भावों की अनुगामिनी है।'[1] एक स्थल पर भाषा के संबंध मे अपने विचार व्यक्त

---

१ - प्रबंध पद्म : पृष्ठ १२।

करते हुए वे अप्रत्यक्षत: भावों को प्रथम महत्व दे जाते हैं :-

` हमारा यह अभिप्राय भी नहीं कि भाषा मुश्किल लिखी जाय, नहीं उसका प्रवाह भावों के अनुकूल होना चाहिए । आप निकली हुई भाषा और गढ़ी हुई भाषा छिपती नहीं । भावानुसारिणी कुछ मुश्किल होने पर भी भाषा समझ में आ जाती है ।`[1] एक स्थल पर वे भावों के प्रथम स्थान देते हैं ।' जैसे भावों के अनुरूप भाषा होनी चाहिए, वैसे ही भावों के सौन्दर्य के अनुरूप ही रूप सौन्दर्य होगा ।[2] निराला जी समस्त प्रकार के श्रेष्ठ साहित्य के मूल में भावों को ही मान मानते हैं । ऐसा साहित्य मनुष्य मात्र का साहित्य है, भावों से, केवल भाषा का एक देशगत आवरण उसपर रहता है ।[3] ` निराला ` जी ने कविता को हृदयस्थ अनुभूति ही माना है :-

` अपनी कविता
तुम रहो एक मेरे उर में
अपनी छवि में शुचि संचरिता ।` (अपरा: बन-बेला : पृष्ठ ६६)

` तुम और मैं ` में वे भावों पर ही विशेष बल देते हैं:-

` तुम विमल हृदय उच्छ्वास
और मैं कान्त-कामिनी कविता ।` (अपरा : पृष्ठ ६८)

यदि ईश्वर विमल हृदय उच्छ्वास (अनुभूति) है तो कवि साकार काव्य होकर उसकी अभिव्यक्ति । तात्पर्य यह कि काव्य के मूल में उच्छ्वास, अनुभूति या भाव ही है:-

` तुम मृदु मानस के भाव
और मैं मनो रंजिनी भाषा ।` (वहीं)

---

१ - प्रबन्ध पद्म : पृष्ठ १२ ।
२ - तदेव : पृष्ठ २७५ ।
३ - तदेव : पृष्ठ २५६ ।

` निराला ` जी अपने पदों अथवा काव्य में अनुभूतियों या भावों की सघनता ही चाहते हैं :-

` भाव जो छलके पदों पर
हो न हलके, हों न हलके । ` (अपरा)

` तुलसीदास ` ने भी काव्यों में उन्मुक्त भावों के प्रवाह की ओर ही इंगित करते हैं:-

` जिस कलिका में कवि रहा बन्द
वह आज उसी में खुली मंद
भारती रूप में सुरभि छन्द निःप्रश्रय । (अपरा)

तात्पर्य यह कि ` निराला ` जी काव्य में भाव तत्व को विशेष महत्व देते हैं ।

भाव-तत्व के अतिरिक्त उन्होंने कल्पना - तत्व पर भी विचार किया है । कल्पना के प्रसून वासन्तिक पुष्पों से अधिक सुन्दर होते हैं :-

` देखता हूं
फूलते नहीं हैं फूल वैरो वसन्त में
जैसे तब कल्पना की डाली पर खिलते हैं । ` (परिमल: पृष्ठ २०८)

जागो फिर एक बार में भी कल्पना विवृति विषयक उक्ति है:-

` फैल जाने दो पीठ पर
कल्पना से कोमल
ऋजु-कुटिल प्रसार का भी केश गुच्छ । ` (अपरा:पृष्ठ १७)

` राम की शक्ति पूजा ` में कवि मौलिक-कल्पना का नाम लेते हैं :

` शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन । `

`विधवा` नाम्नी कविता में वे `अमर कल्पना में स्वच्छन्द विहार` की बात करते हैं तो `यमुना के प्रति` में `ललित कल्पना गति अभिराम` कहते हैं। कविता को वे कल्पना के कानन की रानी कहते हैं :-

`कल्पना के कानन की रानी
आओ, आओ, मृदु पद मेरे
मानस की कुसुमित वाणी।`

कवि में कल्पना होती है -

`कवियों की कल्पना तो
देखती ये मोहें बालिका सीखड़ी`। (पंचवटी प्रसंग)

अपनी एक गद्य - रचना में वे कहते हैं कि कविता-प्रिय मनुष्य कल्पना -प्रिय हो जाता है। उससे काम नहीं होता। ललित कल्पना का मनुष्य को कर्म के कठोर क्षेत्र पर उतरते भय दिखाती है।[१]

कुल मिलाकर, हम यही कह सकते हैं कि निराला जी काव्य -रचना में कल्पना का बहुत बड़ा हाथ मानते हैं। शेली ने कहा था कि काव्य की निर्माण प्रक्रिया कल्पना की प्रक्रिया है। निराला का कथन है कि -`कलाकार की कल्पना जिस भाव को सौन्दर्य के माध्यम से ग्रहण करती है वह सत्य है और अनुभूति की सच्चाई तो सब दिन सुन्दर होती है।[२]

संक्षेप में, `निराला` जी सत्य, शिव, सुन्दर के अतिरिक्त भाव और कल्पना को भी काव्य का उपादान मानते हैं।

---

१ - चयन : पृष्ठ २५।

२. - निराला काव्य : पुनर्मूल्यांकन : डा० धनंजय वर्मा : पृष्ठ ६२।

सुमित्रानन्दन पंत की धारणा :

पंत जी के अनुसार काव्य में सत्य, सौन्दर्य और अनुभूति होने चाहिए:- ' किसी कलाकृति में मुख्यत: तीन गुणों का समावेश रहना चाहिए - (१) सौन्दर्य-बोध (२) व्यापक और गम्भीर अनुभूति (३) उपयोगी सत्य। इनका रहस्य-मिश्रण ही कलावस्तु में लोकोत्तरानन्ददायी रस की पुष्टि करता है।'[१] इन तीनों में पंतजी का झुकाव सौन्दर्य की ओर है किन्तु इतना यह भी माना जा सकता है कि उन्हें अनुभूति की अनुपस्थिति भी स्वीकार नहीं है :- ' आराम से ही मुझे अपने मधुमयगान अपने चारों ओर धूलि की ढेरी में अनजान बिखरे पड़े मिले हैं।'[२] यही भाव ' पल्लव ' में भी व्यक्त है -

' धूलि की ढेरी में अनजान
छिपे हैं मेरे मधुमय गान। (पल्लव : पृष्ठ ५७)

पंत जी सत्य के दो रूप मानते हैं - १ - यथार्थात्मिक और २ - आदर्शात्मक। सत्य के दोनो रूप हैं - शराबी शराब पीता है, यह सत्य है, उसे शराब नहीं पीनी चाहिए, यह भी सत्य है। उसका एक वास्तविक (फैक्चुवल) रूप है और दूसरा परिणाम से संबंध रखने वाला।'[३]

सत्य और शिव एक दूसरे से अभिन्न है। सत्य शिव में निहित होता है। यदि कोई वस्तु उपयोगी (शिव) है तो उसके आधारभूत कारण उस उपयोगिता से संबंध रखने वाले सत्य में अवश्य होनी चाहिए, नहीं तो वह उपयोगी नहीं हो सकती।[४] सत्य की बहिर्मुखी रूप को ग्रहण करने के अनन्तर ही शिव का अन्तर्मुखी रूप समृद्ध होता है - ' अनुभूति की तीव्रता का बोध बहिर्मुखी (Extrovert) स्वभाव अधिक करता

---

१ - गद्य पथ : पृष्ठ २०१।
२ - तदेव - : पृष्ठ २१६।
३ - आधुनिक कवि, भाग २ : पृष्ठ ६-७।
४ - तदेव - - - - : पृष्ठ ६।

सकता है । मंगल का बोध अन्तर्मुखी (Introvert) स्वभाव । "[१]

पंत जी ने काव्य में शिव तत्व की अभिव्यक्ति निम्नांकित पंक्तियों में की है-

"सभी महाकवियों की वाणी जन मंगल की
महत् भावनाओं से प्रेरित रही निरंतर । "[२]

पंत जी ने सौन्दर्य तत्व में सहायक कल्पना को प्रथम तथा भावों को गौण स्थान प्रदान किया है :-

"मैं कल्पना के सत्य को सबसे बड़ा सत्य मानता हूं और उसे ईश्वरीय प्रतिभा का अंश भी मानता हूं ----- वीणा से लेकर ग्राम्या तक अपनी रचनाओं में मैंने अपनी कल्पना ही को वाणी दी है और उसी का प्रभाव उन पर मुख्य रूप से रहा है । शेष सब विचार, भाव, शैली आदि उसकी पुष्टि के लिए गौण रूप से कार्य करते हैं । "[३] उनके काव्य में कल्पना के विषय में अनेक उक्तियां आयी है :-

१ - कह उसे कल्पनाओं की
कल-कल्पलता अपनाया । (पल्लव, पृष्ठ ५७)

२ - कल्पना में है सिसकती वेदना
अश्रु में जीता सिसकता गान है । (पल्लव, पृष्ठ ६५)

३ - विपुल कल्पना से, भावों से
खोल हृदय के सौ-सौ द्वार । (पल्लव, पृष्ठ ८५)

४ - कल्पना के ये शिशु नादान
हंसा देते हैं मुझे निदान । (पल्लव, पृष्ठ १००)

---

१ - आधुनिक कवि, भाग २ : पृष्ठ ६ ।
२ - स्वर्णा : पृष्ठ ६८ ।
३ - आधुनिक कवि : २, पृष्ठ ३३ ।

उपर्युक्त उद्धरणों से सिद्ध है कि वे कल्पना को प्रथम तथा भावों को गौण मानते हैं। कल्पना, सत्य का ही अंग है और सत्य ही सुन्दरम् है जो शिवम् में परिणत हो जाता है। अतः पंत जी के काव्य में सत्य (कल्पना), शिव (अनुभूति) और सुन्दर तीनों मिलकर एक हो गए हैं :-

> 'वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप
> हृदय में बनता प्रणय अपार
> लोचनों में लावण्य अनूप
> लोक सेवा में शिव अविकार। (पल्लव, पृष्ठ १५८)'

फिर भी 'पंत जी सुन्दर के ही कवि हैं- यद्यपि उनका सुन्दर शिव और सत्य से शून्य नहीं है। [१]

'पंत जी की कविता को दृष्टि में रखकर यही निष्कर्ष निकलता है कि कविता का प्राण सौन्दर्य ही है। शिवत्व उतना नहीं क्योंकि पंत की वे रचनाएं जिनमें सौन्दर्य का स्वच्छ वर्णन है अधिक कवित्व पूर्ण है और जिनमें शिवत्व का वर्णन है, उतनी कवित्वपूर्ण नहीं।' [२] एक स्थल पर पंत जी ने लिखा है :-

> 'सुन्दर, शिव, सत्य कला के कल्पित माप-मान
> बन गये स्थूल, जग-जीवन से हो एक - प्राण।' (युगवाणी, पृष्ठ ४)

यहां सुन्दर, सत्य और शिव काव्य के कल्पित मापदण्ड माने गये हैं। परन्तु उनकी यह कविता प्रगतिवादी है, न कि छायावादी। अतः उक्त कथन को हम छायावादी काव्य दृष्टि के अध्ययन में नही ले सकते। अतः छायावादी कविता में, पंत जी के अनुसार, सत्य (कल्पना), शिव (अनुभूति) और सुन्दर ये तीन ही मुख्य उपादान है।

---

१ - सुमित्रानन्दन पंत : डा० नगेन्द्र, पृष्ठ १६।

२ - हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास : डा० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ ३७४।

महादेवी वर्मा की धारणा :

महादेवी वर्मा ~~की~~ काव्य में अनुभूति तत्व को मूल मानती है, परन्तु वे चिन्तन और कल्पना से भी उदासीन नहीं हैं। वे काव्य को जीवन से संबद्ध मानती हैं और उसमें मानव-जीवन के अन्तर्जगत और बहिर्जगत दोनों के अंकन पर बल देती हैं। उन्हीं के शब्दों में, " हमारी मानसिक वृत्तियों की ऐसी सामंजस्यपूर्ण एकता साहित्य के अतिरिक्त और कहीं सम्भव नहीं। उसके लिए न हमारा अन्तर्जगत त्याज्य है और न वाह्य क्योंकि उसका विषय सम्पूर्ण जीवन है, आंशिक नहीं।"[१] कवियित्री ~~ने~~ काव्य के उपादानों में अनुभूति, भावना अथवा रागात्मक दृष्टिकोण का परिचय यों देती हैं:-

" आज का बुद्धिवादी युग चाहता है कि कवि बिना अपनी भावना का रंग चढ़ाए, यथार्थ का चित्र दे, परन्तु इस यथार्थ का कला में स्थान नहीं क्योंकि वह जीवन के किसी भी रूप से हमारा रागात्मक संबंध नहीं स्थापित कर सकता --- कवि जीवन के निम्नतम् स्तर से भी काव्य के उपादान ला सकता है, परन्तु वे उसी के होकर सफल अभिव्यक्ति करेंगे और उसके रागात्मक दृष्टिकोण से ही सजीवता पा सकेंगे।"[२]

अनुभूति तत्व के बाद वे काव्य में सत्य तत्व को लेती हैं। उनके अनुसार काव्य में वर्णित सत्य व्यापक होता है -

" कविता हमारे व्यष्टि ~~वाम्पि~~ सीमित जीवन को समष्टि व्यापक जीवन तक फैलाने के लिए ही सत्य को अपनी परिधि में बांधती है।"[३]

---

१ - आधुनिक कवि : भाग १, पृष्ठ १० ।
२ - आधुनिक कवि : भाग १, पृष्ठ २३ ।
३ - आधुनिक कवि : भाग १, पृष्ठ ११ ।

काव्य में वर्णित सत्य शाश्वत और सार्वदेशिक होता है। ये सत्य विज्ञान के सत्य से अधिक व्यापक घन संश्लेषणात्मक और प्रभविष्णु होते हैं। कवि का सत्य केलिडोस्कोपिक सत्य ही नहीं होता, अपितु उससे भी विशाल होता है। महादेवी जी लिखती हैं कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण जीवन का बौद्धिक मूल्य देता है, चित्र नहीं, और यदि देता भी है, तो वे एक-एक मांसपेशी, शिरा, अस्थि आदि दिखाते हुए उस शरीर चित्र के समान रहते हैं, जिसका उपयोग केवल शरीर विज्ञान के लिए है। - - - - विश्लेषणात्मक तथा बौद्धिक होने के कारण वैज्ञानिक दृष्टिकोण एक ओर जीवन के अखण्ड रूप की भावना ही नहीं कर सकता और दूसरी ओर चिंतन में एकान्तिक होता चला जाता है।[१] परन्तु काव्य का सत्य ठीक इसके विपरीत एकान्तिकता से अनेकान्तिकता की ओर उन्मुख होता है। उसमें कवि की अनुभूतियां जन-जन की अनुभूतियां हो जाती हैं और सत्य के व्यापक क्षितिज का द्वार उन्मुक्त हो जाता है। दूसरे शब्दों में, महादेवी जी काव्य के उसी गुण की ओर संकेत कर रही हैं जिसे आधुनिक आलोचक निर्व्यक्तीकरण कहता है - व्यक्तिगत अनुभूति को समष्टिगत सांचे में ढालना।[२]

सत्य के अतिरिक्त शिवत्व का भी उन्होंने यत्र-तत्र उल्लेख किया है। अतः कवि का दर्शन, जीवन के प्रति उसकी आस्था का दूसरा नाम है।[३] सत्य को वाणी देने में शिव के अतिरिक्त सुन्दरम् का भी महत्वपूर्ण योगदान रहता है। कलाकार यदि सत्य अर्थों में कलाकार हो तो वह काव्य को सौन्दर्यमय आकार देगा, उसमें वास्तविकता का रंग भरेगा और उससे जीवन-संगीत की सुरीली लय की सृष्टि कर लेगा।[४]

---

१ - आधुनिक कवि, भाग १ : पृष्ठ ११।
२ - त्रिशंकु : पृष्ठ १११-१२।
३ - दीपशिखा: पृष्ठ १७।
४ - क्षणदा : पृष्ठ ५०।

इस प्रकार यदि पंत जी ने काव्य में `सुन्दरम्` पर बल दिया, तो महादेवी जी ने `सत्यम्` को ही काव्य का साध्य मानती हैं। उनकी दृष्टि में `सुन्दरम्` तो `सत्य` तक पहुंचने का साधन है। सत्य की यथार्थ प्राप्ति ही आनन्द है, वही चरम सौन्दर्य है। यहां देखने से मालूम होता है कि महादेवी जी के अनुसार काव्य के तीन उपादान हैं - सत्य, शिव और सुन्दर। यद्यपि ये तीनों संपृक्त हैं परन्तु वर्मा जी ने सत्य को विशिष्ट स्थान प्रदान कर काव्य के उपादानों के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

आंग्ल रोमांटिक कवियों के विचार :

प्रसिद्ध अंग्रेजी रोमांटिक कवि वर्ड्सवर्थ काव्य में तीव्र अनुभूति के स्वत: प्रवाह को सर्वोपरि स्थान देता है। इसके पश्चात् ही वह `कल्पना के रंग` की बात करता है। घटनाओं और स्थितियों का साधारण जीवन से चयन, उनका मनुष्यों की वास्तविक भाषा में प्रस्तुतीकरण, उसमें कल्पना का समावेश - ये उनके काव्य सिद्धान्त हैं। अत: उनके अनुसार अनुभूति और कल्पनातत्व काव्य के प्रमुख उपादान हुए।[१]

कालरिज ने भी काव्य में सशक्त भावनाओं को तो महत्व प्रदान किया परन्तु काव्य प्रक्रिया में सर्वोपरि स्थान प्रदान किया रचनात्मक कल्पना को। अपनी `बायोग्राफिया लिटरेरिया` में उसने कल्पना और फैन्सी का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है।

रोमांटिक कवि पी0बी0 शैली ने काव्य को कल्पना की अभिव्यक्ति कहा है। पिछले अध्याय में हमने यह भी अवलोकन किया है कि शैली कल्पना के बाद अनुभूति तत्व को प्रमुख मानते हैं। इस प्रकार, संक्षेप में, काव्य के दो प्रमुख उपादान हैं - कल्पना और अनुभूति।

---

१ - The ascertained object, then, which I proposed to myself in these poems was to choose incidents and situations from common life and at the same time throw over them certain colouring of imagination.
(Lyrical Ballad, A book of Eng. Lit. Vol. II, pg. 53, Macmillan Company, New York, 1947).

प्रसिद्ध कवि जान कीट्स ने काव्य में सौन्दर्यतत्व को विशेष महत्व प्रदान किया है। उन्होंने पंत जी की भांति सौन्दर्य को ही सत्य और सत्य को ही सौन्दर्य माना है।[१] कीट्स ने सौन्दर्य को ही अपना धर्म माना है। उनके मतानुसार सौन्दर्य की एक वस्तु हमेशा के लिए आनन्द की वस्तु हो जाती है। कीट्स के अनुसार सुन्दरम् ही सत्यम् है और जहां दोनों का समन्वय होगा वहां शिव तत्व भी होगा। अतः कीट्स ने काव्य में सुन्दर, सत्य और शिव तीन प्रधान उपकरण माना है। इसके अतिरिक्त उन्होंने लिखा है कि कविता का स्फुरण वैसे ही प्राकृतिक रूप से होना चाहिए जैसे वृक्ष की पत्तियां। यहां काव्य में अनुभूति तत्व पर बल है। इस प्रकार कीट्स ने सत्य, शिव और सुन्दर के साथ स्वानुभूति को काव्य का प्रमुख उपादान माना है।

निष्कर्ष :

समासतः हम कह सकते हैं कि अनुभूति या भाव, कल्पना (सत्य) तथा सौन्दर्य ही छायावादी कविता के प्रमुख उपादान हैं।

छायावादी काव्य में अनुभूति

यों तो अनुभूति सभी युगों के साहित्य के मूल में विद्यमान है परन्तु छायावाद युग में तो वह काव्य का प्राण ही बन गयी। छायावादी काव्य में उच्छृंखल भावुकता का अबाध उद्गार है, यहां तक कि भावुकता छायावाद का पर्याय हो गयी। आमतौर से लोगों में छायावादी कहने के माने ही था किसी को अत्यन्त भावुक कहना।[२] छायावादी

१ - Beauty is Truth, Truth Beauty (Ode to a Grecian urn: J. Keats.

२ - आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां : डा० नामवर सिंह : पृष्ठ २६।

कविता वस्तुत: स्वानुभूति निरूपिणी रही है। इसमें कवि की व्यक्तिगत अनुभूतियाँ ही काव्य बन गयीं -

> "आह, यह मेरा गीला गान!
> वर्ण, वर्ण है उर की कम्पन,
> शब्द - शब्द है सुधि की दंशन
> चरण - चरण है आह। (पल्लव)

छायावादी काव्य में यही प्रधान तत्व है। कतिपय आलोचकों और कवियों ने इसे कल्पना के बाद स्थान दिया है परन्तु उपर्युक्त तथ्यों का आकलन करने पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, कि छायावादी काव्य में अनुभूति को शीर्ष स्थान प्राप्त है। "स्मरण रखना होगा कि छायावादी काव्य की चिन्तन दृष्टि तो अवश्य अध्यात्म और दर्शन की देन है किन्तु काव्य - प्रेरणा के निर्माण में भावना का ही हाथ है। वस्तुस्थिति यह है कि काव्य में कल्पना और दर्शन भी भावना से ही संचालित हैं।"[1] विविध आलोचक भी इसी मत का प्रतिपादन करते हैं :-

"सामान्य अनुभव से यही पता चलता है कि कल्पना भावना के रंग से रंगी रहती है और भावोद्रेक के लिए उसका सहयोग अपेक्षित होता है। मनोविज्ञान की नवीन खोजों से पता चला है कि मानव-भावना मस्तिष्क की क्रिया के लिए न केवल भूमि उर्वर बनाती है, वरन् सीधे उसको शक्ति और क्रियाशीलता प्रदान करती है।"[2]

और "मोटे तौर पर कल्पना और अनुभूति का काव्य में कार्य-कारण संबंध माना जाता है। अनुभूतियाँ या भावना काव्य का प्रेरक तत्व है, उसकी मूलभूत सत्ता है। कल्पना का

---

१ - छायावादी काव्य और निराला : डा० (कु०) शान्ति श्रीवास्तव : पृष्ठ ८६।

२ - साहित्य सिद्धान्त : डा० राम अवध द्विवेदी : पृष्ठ १०७।

मुख्य स्त्रोत अनुभूति है और उसकी परिणति है काव्य की रूपात्मक अभिव्यंजना । इस प्रक्रिया में गतिशील तत्व अनुभूति है ।' [1] छायावादी काव्य में अनुभूति ही केन्द्रक है ।

इसी से काव्य में आशा-निराशा के सुन्दर चित्र आए और व्यक्तिगत सुख-दु:खों की अभिव्यक्ति । अनुभूति के ही क्षणों में कवि कोलाहल की अवनी तजकर अतीत की ओर जाता है और कभी स्वर्णिम भविष्य की कल्पना से झूम उठता है । अनुभूति से ही कल्पना का जन्म होता है । अनुभूति की उच्च भूमि पर ही काव्य दर्शन का स्पर्श करता है । 'रोमांटिक भावुकता जब भी उमड़कर दार्शनिक ऊंचाई पर पहुंचती है, उसमें दर्शन का रहस्यवादी पक्ष आ जाया करता है ।' [2]

हिन्दी - साहित्य के वीर गाथा काल में अनुभूति की एक ही मुख्य दिशा थी, वह कवि के व्यक्तिगत दु:ख - सुखों की वाहिका न बन सकी । भक्तिकाल में अवश्य ही अनुभूति का प्रवाह अपने उत्कृष्ट रूप में मिलता है । तद्युगीन कवियों के उद्गार भी वैयक्तिक हैं परन्तु वह केवल दैन्य - प्रदर्शन, अपने अवगुणों का निवेदन और भगवत्शरण-प्राप्ति तक ही सीमित है । रीतियुग में अनुभूतितत्व को कोई विशिष्ठ स्थान नहीं मिला । वह कला काल था जिसमें उक्ति वैचित्र्य, कथन-चमत्कार और अभिव्यक्ति की सुष्ठुतर रीति ही मुख्य थी । इसीलिए ठाकुर को कहना पड़ा कि :-

'लोगन कवित्त कियो खेल करि जानो है ।'

तथा -

'मांस की गरेथी कुच कंचन कलश कहें,
मुख चन्द्रमा जो असलेषमा को घर है ।
- - - - - - - - - - - - - -
एती झूठी जुगुती बनावे औ कहावे कवि,
ताहू पै कहे कि हमें शारदा को बर है ।'

---

१ - नया साहित्य : नये प्रश्न : आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी : पृष्ठ १४७ ।
२ - छायावादी काव्य : कृष्णचन्द्र वर्मा : ६८ ।

उक्त काल में अनुभूति की जो उपेक्षा और कला तत्व की जो अपेक्षा हुई, उससे इस काल की कविता सहृदय-हृदय को अभिभूत न कर सकी क्योंकि उस काल के कवि ` लोग हैं लागी कवित्त बनावत ` की परिपाटी पर चल रहे थे।

रीतिकाल के बाद छायावाद युग में भाव क्रान्ति हुई। कला का स्थान अब अनुभूति ले चुकी थी। यहां कवि की वैयक्तिक अनुभूतियों की प्रकृत अभिव्यक्ति हुई। भक्तिकालीन वैयक्तिक अनुभूति तो केवल एकांगी थी परन्तु इस काल में इसका सर्वतोमुखी विकास हुआ। यदि यह एक ओर वैयक्तिक करुणा की अभिव्यक्ति करती थी तो दूसरी ओर आशा, उत्साह आदि से समन्वित थी और तीसरी ओर इसने उच्चभूमि पर दार्शनिक रहस्यानुभूतियों का रूप ग्रहण किया। इस प्रकार एक ही अनुभूति अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुई -

` एक ही तो असीम उल्लास
विश्व में पाता विविधाभास। ` (पल्लव : पृष्ठ १५८)

प्रथमतः कवि अपनी वेदना को व्यक्त करता है :-

` रो-रो कर सिसक - सिसक कर
कहता मैं करुण कहानी,
तुम सुमन नोचते सुनते
करते जानी अनजानी। ` (आंसू)

महादेवी जी ने तो जीवन का जन्म ही वेदना से माना है :-

` जीवन विरह का जलजात।
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास।
अश्रु इसका दिवस चुनता अश्रु चुनती रात। ` (यामा)

` निराला ` जी के लिए तो -

` दुःख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूं आज, जो नहीं कही। (सरोज:स्मृति)

इसी प्रकार पंत जी भी कहते हैं :-

> ' सिसकते हैं समुद्र से मन
> उमड़ते हैं नभ से लोचन,
> विश्ववाणी ही है क्रन्दन,
> विश्व का काव्य अश्रुकन । '

दु:ख और वेदना के विवृद्धतम् होने पर कवि पलायन कर जाना चाहता है :-

> ' ले चल मुझे भुलावा देकर
> मेरे नाविक धीरे - धीरे । '

कभी - कभी छायावादी अनुभूति निराशा में परिणत हो जाती है :-

> ' कहा मनु ने, ' नभ धरणी बीच
> बना जीवन रहस्य निरूपाय ।
> एक उल्का सा जलता भ्रान्त,
> शून्य में फिरता हूं असहाय । ' (कामायनी)

परन्तु इसका तात्पर्य नहीं कि छायावादी कवियों ने पलायन और नैराश्य के ही गीत गाये हैं । बहुत से आलोचक छायावाद को पलायनवाद और नैराश्य मूलक कहकर उसकी आलोचना करते हैं, जो सर्वथा अनुचित है । ' छायावादी पलायन वर्तमान की संकीर्ण विघटित होती हुई ह्रासोन्मुखी वास्तविकता से एक नवीन उच्च वास्तविकता की खोज के लिए पलायन था, यदि उसे पलायन कहना आवश्यक ही है तो । '[१] इस प्रकार छायावाद पलायनवाद नहीं । इसी प्रकार नैराश्य भी छायावाद का एक अंग बन कर आया है, समग्र नहीं । सच तो यह है कि छायावादी कविता ने भावों को अप्राकृतिक कृत्रिम नालियों से नहीं प्रवाहित किया । यहां तो भावों की मुक्ति है । अत: यहां

---

१ - छायावाद : पुनर्मुल्यांकन : पंत : पृष्ठ १६, १९६५ ।

विविधभाव हैं। यदि यहां नैराश्य है तो कवि और पाठक को प्रेरणा और उत्साह प्रदान करने की भी प्रवृत्ति है :-

'और यह क्या तुम सुनते नहीं
विधाता का मंगल वरदान
शक्तिशाली हो विजयी बनो
विश्व में गूंज रहा जयगान।' (कामायनी)

'निराला' ने भी नैराश्य, दैन्य और असहायानुभूति के विपरीत कहा है:-

'तुम हो महान्
तुम सदा हो महान्
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम,
पद रज भर भी है नहीं
पूरा यह विश्व-भार है-
जागो फिर एक बार।' (अपरा)

हमारे आलोचकों ने इन पंक्तियों पर ध्यान ही नहीं दिया।

छायावादी कवि की यही अनुभूति उसे विश्व के चर-अचर रूपों में अभेद-दर्शन कराती है :-

'एक छवि के असंख्य उडुगण
एक ही सब में स्पन्दन
एक ही छवि के विभात में लीन
एक ही विधि के रे आधीन।' (पल्लव)

अनुभूति के तीव्रतम क्षणों में ही कवि को समरसता का अनुभव होता है :-

> ` समरस थे जड़ या चेतन,
> सुन्दर साकार बना था,
> चेतनता एक बिलसती
> आनंद अखंड घना था । (कामायनी)

छायावादी अनुभूति ने मानव की सूक्ष्म अन्तर्वृत्तियों का जो चित्र प्रस्तुत किया वह समस्त हिन्दी-साहित्य में दुर्लभ है । `प्रसाद ` जी ने ` कामायनी ` महाकाव्य में मानव की सूक्ष्म वृत्तियों का जो सुन्दर - सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत किया है वह हमारे साहित्य की एक अविस्मरणीय घटना है । ऐसा सूर और तुलसी जैसे कवि सम्राट भी नहीं कर सके हैं । वस्तुत: अनुभूतियों के जीवन्त चित्रण के क्षेत्र में यह युग अपना शानी नहीं रखता । `प्रसाद ` जी ने तो ` अखिल मानव भावों के सत्य` को अंकित करने का व्रत सा ले रखा है :-

> ` चेतना का सुन्दर इतिहास
> अखिल मानव-भावों का सत्य,
> विश्व के हृदय - पटल पर दिव्य
> अक्षरों में अंकित हो नित्य ।`

उन्होंने इस महाकाव्य के सर्गों का नामकरण तक चिन्ता, आशा, श्रद्धादि भावों के नाम पर ही किया है । ` चिन्ता ` का स्वरूपदर्शनीय है :-

> ` ओ, चिन्ता की पहली रेखा
> अरी विश्व बन की व्याली
> ज्वालामुखी स्फोट से भीषण
> प्रथम कम्प सी मतवाली ।` (कामा0: चिन्ता)

'लज्जा' का एक चित्र अवलोकन करें :-

'चंचल किशोर सुन्दरता की
मैं करती रहती रखवाली
मैं वह हल्की सी मसलन हूं
जो बनती कानों में लाली ।' (कामा०)

वस्तुत: 'कामायनी' काव्य में मनोविज्ञान और मनोविज्ञान में काव्य है ।

छायावादी काव्य में कवि की व्यक्तिगत अनुभूतियों का साधारणीकरण भी हुआ है । 'जब तक किसी भाव का कोई भी विषय इस रूप में नहीं लाया जाता कि सामान्यत: वह सबके उसी भाव का अवलम्बन हो सके, तब तक उसमें रसोद्बोधन की पूर्ण शक्ति नहीं आती । इसी रूप में लाया जाना हमारे यहां 'साधारणीकरण' कहलाता है । इसी लोक-हृदय से हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस दशा है ।'[१]

तथा

'कालरिज का कहना है कि व्यक्तिगत अनुभूतियों को साधारणीकृत होकर निर्वैयक्तिक हो जाना चाहिए और प्रतिपादन भी ऐसा होना चाहिए कि उसमें वैयक्तिकता की छाप नहीं आने पावे । लेखक को उसी तरह रचना की ओट में छिपा रहना चाहिए जिस तरह संसार तथा प्रकृति की ओट में ईश्वर ।'[२] छायावादी काव्य में कवि की व्यक्तिगत अनुभूतियां साधारणीकृत होकर लोक धरातल पर पहुंच गयी है । यहां व्यष्टि का समष्टि में लय है । जहां कहीं भी व्यक्तिगत प्रेम और भावुकता का प्रसंग है, स्वस्थ मानवी धरातल पर प्रतिष्ठित होने के कारण वह सबके हृदय को

---

१ - चिन्तामणि : भाग १ : पृष्ठ २३७ ।

२ - रोमांटिक साहित्य शास्त्र : देवराज उपाध्याय : पृष्ठ १४४, सन् १९५१ ।

रसमग्न करता है ---- वस्तुत: छायावादी काव्य सम्पूर्ण जड़-चेतन प्राणी को एक भावना-सूत्र में जोड़ता है, जिससे काव्य-सौन्दर्य का लोक-धरातल पूर्णत: निखर उठता है। निश्चय ही इस धरातल पर पहुंचकर पाठक की संवेदना विस्तार पाती है और अपनी संकुचित सीमा से ऊपर उठने की प्रेरणा ग्रहण करती है। अत: काव्यानुशीलन द्वारा रस-दशा की प्राप्ति पूर्ण सम्भाव्य है।'[१]

संक्षेप में, अनुभूति - प्रसूत छायावादी काव्य ही विशुद्ध काव्य है। वह केवल टेकनीक या शैली मात्र नही। 'प्रत्येक सच्ची काव्यधारा के लिए अनुभूति की अन्त:प्रेरणा अनिवार्य है और जहां अनुभूति की अन्त:प्रेरणा है, वहां काव्य टेकनीक मात्र का प्रयोग कैसे हो सकता है? छायावाद निश्चित ही शुद्ध कविता है, उसके पीछे अनुभूति की अन्त:प्रेरणा असंदिग्ध है। उसकी अभिव्यक्ति की विशेषता भाव पद्धति की विशिष्टता के कारण है।'[२]

छायावादी - काव्य में 'कल्पना' तत्व

छायावादी काव्य का दूसरा उपकरण है - कल्पना। 'पूर्व अनुभूति की योजना से अपूर्व की उद्भावना की क्रिया या शक्ति को कल्पना कहते हैं।'[३] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'मानसिक रूप विधान का नाम ही कल्पना' रखा है। इस कल्पना शक्ति को ही कलाकार की सर्जना शक्ति कहा गया है। जिसके द्वारा उसकी कला में नये-नये रूप सामने आते हैं। छायावादी कविता में कल्पना का असाधारण महत्व रहा है और छायावादी कवि भी एक बहुत बड़ी सीमा तक कल्पनाजीवी रहे हैं।

---

१ - छायावादी काव्य और निराला : डा० (कु०) शान्ति श्रीवास्तव : पृष्ठ ६६।
२ - आधुनिक कविता की मुख्य प्रवृत्तियां : डा० नगेन्द्र : पृष्ठ १५।
३ - हिन्दी साहित्य कोश, कल्पना : पृष्ठ २०६।

` प्रसाद ` का कल्पना - विषयक मत :

प्रसाद काव्य के प्रारम्भ से ही कल्पना का उल्लेख मिलता है। ` कामायनी ` में वे कल्पना के विषय में कहते हैं कि -

` नखत की आशा किरण समान
हृदय की कोमल कवि की कान्त
कल्पना की लघु-लहरी दिव्य
कर रही मानस हलचल शान्त।` (कामा० : श्रद्धा)

यहां ` प्रसाद ` जी कल्पना को कवि के कोमल हृदय की कान्त दिव्य लघु लहरी कहते हैं। कल्पना का प्रमुख कार्य-व्यापार है - मानस हलचल को शान्त करना अर्थात् अनुभूति उद्वेलित मानव-मानस को विविध चित्रों द्वारा शान्त करना। एक स्थल पर वे कल्पना को ` सुन्दरम् ` का सहायक मानते हैं और कल्पना के सत्य को सर्वश्रेष्ठ बतलाते हैं:-

` एक कल्पना है यह मीठी
इससे कुछ सुन्दर होगा।
हां, कि वास्तविकता से अच्छी
सत्य इसी को वर देगा।` (कामायनी : निर्वेद)

कल्पना के कार्य के विषय में वे कहते हैं कि :-

` हे कल्पना सुखदान
तुम मनुज जीवन प्राण
तुम विशद व्योम समान।`[१]

अर्थात् कल्पना :

(१) सुखदायिनी होती है
(२) मनुज-जीवन-दायिनी होती है
(३) यह आकाश-सदृश अनन्त है।

---

१ - छायावाद और महादेवी : डा० नन्द कुमार राय : पृष्ठ ७७।

`निराला` के विचार :

`निराला` जी ने तो कविता को `कल्पना के कानन की रानी` कहकर आवाहन किया है :-

`कल्पना के कानन की रानी
आओ, आओ मृदु पद मेरे
मानस की कुसुमित वाणी।`

वे कल्पना का आवाहन करते हैं क्योंकि :-

`मार्ग मनोहर हो मेरे (कवि के) जीवन का
खुल जाये पथ रुंधा कंटक बन का
धुल जाये मल मेरे तन का, मन का।`[१]

निराला के अनुसार कल्पना के मूल में अनुभूति तो काम करती ही है, बौद्धिक मादा भी कम कारगार नहीं होता। भावना और अनुभूति के द्वारा कल्पना का संबर्द्धन तथा बुद्धि द्वारा उसका संश्लेषण और उपस्थापन होता है। इसीलिए वे कल्पना से कहते हैं :-

`देख तुम्हारी मूर्ति मनोहर
रहे ताकते ज्ञानी।` (गीति का)

कल्पना को साहित्य सृष्टि, भाव सृष्टि और जीवन सृष्टि के लिए एक प्रमुख तत्व माते हैं। इसीलिए वे बार-बार उससे बर मांगने की हठ करते हैं:-

`मेरे प्राणों के प्याले को भर दो,
प्रिये, दृगों के मद से मादक कर दो
मेरी अखिल पुरातन-प्रियता हर दो
मुझको एक अमर बर दो
मैंने जिसकी हठ ठानी।` (गीतिका: गीथि संख्या २४)

---

१ - छायावाद और महादेवी : डा० नन्द कुमार राय : पृष्ठ ७८।

`पंत जी के विचार :`

पंत जी ने कल्पना के सत्य को सबसे बड़ा सत्य माना है :-

` मैं कल्पना के सत्य को सबसे बड़ा सत्य मानता हूं। मेरी कल्पना को जिन-जिन विचार-धाराओं से प्रेरणा मिली है, उन सबका समीकरण करने की चेष्टा मैंने की है। मेरा विचार है कि ` वीणा ` से लेकर ` ग्राम्या ` तक अपनी सभी रचनाओं में मैंने अपनी कल्पना को ही वाणी दी है और उसी का प्रभाव उन सबपर मुख्य रूप से रहा है। `[1] पंत जी कल्पना को ईश्वरीय प्रतिभा का अंश मानते हैं। वे स्वयं कल्पनाशील होते हुए भी यह कभी नहीं स्वीकार करते कि छायावादी काव्य जीवन से पलायन का काव्य है। उनके अनुसार छायावाद प्रेरणा का काव्य रहा है और यहां कल्पना का पलायन से भिन्न उच्च अर्थों में प्रयोग हुआ है।[2]

पंत तो आठों पहर कल्पना में डूबे रहने वाले कवि के रूप में प्रख्यात रहे हैं पंत ने कल्पना का राग से घनिष्ठ सम्बन्ध माना है। उन्होंने छायावादी कल्पना को वहिर्जगत के बंधनों से मुक्त माना है। मुक्त-कल्पना तर्क-सिद्ध सत्य, रूढ़ दृष्टि और वस्तुनिष्ठ यथातथ्यता से दूर रहती है। मुक्त-कल्पना के लिए पंत जी ने ` उन्निाम कल्पना `, ` सृजनशील कल्पना `, ` अन्तर्मुखी कल्पना ` आदि कई अभिधानों का प्रयोग किया है।[3] पंत जी के काव्य में अनेक स्थलों पर ` कल्पना ` का उल्लेख हुआ है :-

१ – कल्पना के ये विह्वल बाल – (पल्लव : पृष्ठ ५७)

२ – ` कह उसे कल्पनाओं की
कला कल्पलता अपनाया (पल्लव : पृष्ठ ५७)

३ – [illegible]

---

१ – आधुनिक कवि : भाग २, पृष्ठ ३६।
२ – तदेव – – –
३ – छायावादी काव्य : डा० कृष्णाचन्द्र वर्मा : पृष्ठा २३३।

३ - विपुल कल्पना से, भावों से
खोल हृदय के सौ-सौ द्वार। (पल्लव : पृष्ठ ६६)

४ - `कल्पना के ये शिशुनादान
हंसा देते हैं मुझे निदान।` (पल्लव : पृष्ठ १००)

५ - `गूढ़ कल्पना सी कवियों की (पल्लव : १०७)

आगे चलकर पंत जी ने कल्पना का संबंध व्यक्ति की सांस्कृतिक चेतना से जोड़ दिया है। पंत का विश्वास है कि कल्पना में विद्रावण और सूक्ष्मीकरण की शक्ति होती है अर्थात् कल्पना के स्पर्श से वस्तु जगत का घनत्व क्षीण होने लगता है, वह भाव विगलित और सूक्ष्म रूप धारण कर लेता है।

महादेवी वर्मा के विचार :

महादेवी जी काव्य में कल्पना को अनुभूति के बाद ही स्थान देती हैं। छायावादी काव्य की कल्पनाशीलता का कारण उसका प्रकृति-प्रेम है। `छायावाद तथ्यत: प्रकृति के बीच जीवन का उद्‌गीथ है, अत: उसकी कल्पनाएं बहुरंगी और विविध रूपी है।`[१] उनकी दृष्टि में कल्पना प्रत्यक्ष जीवन और जगत से विच्छिन्न नहीं होना चाहिए, उसे स्वप्न से अधिक ठोस धरती की जरूरत है। प्रत्येक कवि और कलाकार अपने संस्कार, जीवन तथा वातावरण के प्रति इतना सजग और संवेदनशील होता है कि उसकी कल्पना उसके ज्ञान और अनुभूति की चित्रमय व्याख्या बन जाती है। महादेवी की कल्पना में इस तरह सौन्दर्य के साथ-साथ वास्तविकता की भी प्रतिष्ठा है।[२]

छायावाद के प्रसिद्ध कवि डा० रामकुमार वर्मा भी पहले कल्पना को अधिक महत्व देते रहे, परन्तु आगे चलकर उन्होंने अनुभूति को प्राधान्य दिया। `रूपराशि` में उन्होंने

---

१ - महादेवी का विवेचनात्मक गद्य : गंगा प्रसाद पाण्डेय : पृष्ठ ६४।

२ - छायावादी काव्य : कृष्ण चन्द्र वर्मा : पृष्ठ २३४।

व्यक्त किया है कि मुझे कविता में कल्पना सबसे अच्छी मालूम पड़ती है। वही एक सूत्र है जिसको पकड़कर कवि इस संसार से उस स्थान पर चढ़ जाता है जहां उसकी इच्छित भावनाओं के द्वारा एक स्वर्ण-संसार निर्मित रहता है। भावना (इमोशन) तो इच्छा का तेजस्वी और परिष्कृत रूप है, वह हृदय को केवल वेगवान बना देती है, किन्तु कवि में निर्माण करने की शक्ति कल्पना के द्वारा ही आती है। वर्मा जी के अनुसार कल्पना साहित्य की सृजनात्मिका शक्ति है। प्रतिभा-सम्पन्न कवि या लेखक कल्पना के सहारे साहित्य में सौन्दर्य की सृष्टि करता है। कवि को जीवन और जगत का अधिकाधिक प्रत्यक्ष दर्शन होना चाहिए क्योंकि, वर्मा जी के अनुसार, इसके अभाव में कल्पना निष्प्रभ हो जाती है।

छायावादी कवियों के उपर्युक्त विवेचनों से निष्कर्ष निकलता है कि कल्पना काव्य का आधारभूत तत्व है। द्वितीयत: यह कोरी उड़ान मात्र नहीं, वह मानव-चेतना की निर्मायिका शक्ति है। तृतीयत: प्रत्येक छायावादी कवि का अपना अतिशय वैयक्तिक दृष्टिकोण है। परिणामस्वरूप उसके काव्य में भी उसी के अनुरूप कल्पना की अभिव्यक्ति होती है।

रोमांटिक कवियों की कल्पना विषयक धारणाएं :

ब्लेक – के अनुसार कल्पना का विश्व शाश्वत विश्व है। यह वह ईश्वरीय हृदय है जिसमें हम इस पंचभौतिक शरीर के अन्त के पश्चात मिलेंगे। यह कल्पना – लोक अनन्त तथा चिरन्तन है। अन्य भौतिक सृष्टि अपने स्वरूप में सीमित एवं नश्वर है। ब्लेक की यही विचार उसे सत्य के अन्तरतम् तक ले जाकर रहस्य का दर्शन करा सकता था,

यथा -

> ` विश्व को एक बालू के कण में देखना
> स्वर्ग को एक जंगली फूल में देखना
> अनंतता को अपनी हथेलियों में सीमित कर लेना
> और शाश्वतता का एक घंटे में दर्शन करना ।`[1]

ब्लेक तो एक कल्पना विहारी था जो अपने विषय में कह सकता था कि मैं रात-दिन भगवान की उपस्थिति में हूं और भगवान कभी भी मुझको विमुख नहीं होते ।[2]

वर्ड्स वर्थ :

लिरिकल बैलड में वर्ड्स वर्थ लिखता है कि साधारण जीवन से चुनी हुई घटनाओं और स्थितियों को कवि कल्पना के रंग में रंगकर इस प्रकार प्रस्तुत करे कि वे सर्वथा नवीन एवं असाधारण प्रतीत हों । तात्पर्य यह कि कवि वस्तुओं का यथार्थवादी अंकन न कर उन्हें कल्पना के रंग में रंगकर प्रस्तुत करे तभी मनुष्य को तत्काल आनन्द (immediate pleasure to human being) मिलेगा । इस आनन्द को कल्पना ही दे सकेगी ।

कल्पना पर विचार करते हुए वर्ड्सवर्थ `फैंसी` की भी बात करता है । वर्ड्सवर्थ `कल्पना` और `फैंसी` में अन्तर भी मानता है । कल्पना का संबंध परिवर्तनशील, अनिश्चित एवं लचीली वस्तुओं से होता है जबकि `फैंसी` का निश्चित एवं स्थिर वस्तुओं से । फिर भी कल्पना और फैंसी दोनों ही रचनात्मक शक्तियां हैं जिनका कार्य स्मृतियों और वस्तुओं को एकत्र एवं एक दूसरे से संबद्ध करके नई वस्तुओं की उद्भावना करना है ।

---

१ - स्वच्छन्तावाद और छायावाद का तुलनात्मक अध्ययन : डा० शिवकरन सिंह, पृष्ठ ६७ - ६८ ।

वर्ड्सवर्थ के अनुसार, कल्पना निरंकुश शक्ति का दूसरा नाम है, यह अतिस्पष्ट अन्तर्दृष्टि है, मस्तिष्क का प्रसार है, यह बुद्धि की पूर्ण उदात्तावस्था है :-

"Imagination is another name for absolute power
And clearest insight, amplitude of mind
And Reason in her most exalted mood". 1

कालरिज की धारणा :

कल्पना संबंधी कालरिज के विचार एक दम मौलिक नहीं है, क्यों कि इन विचारों का आधार दान्ते, प्लाटिनस, कान्ट और शिलिंग में खोजा जा सकता है, किन्तु इसका विस्तृत विवेचन सर्वप्रथम कालरिज ने ही किया। कालरिज ने कल्पना और फैंसी में अन्तर माना है। कालरिज ने दोनों का अन्तर बतलाते हुए कल्पना को रचनात्मक एकीकरण प्रतिमा (Unifying creative faculty) तथा सौन्दर्योत्पादक शक्ति (beauty making power) कहा, तो फैंसी को केवल संयोजिका शक्ति (combinatory power) जिसमें सरलता और मार्मिकता का अभाव रहता है। आबे की निम्न पंक्ति को वह फैंसी का उदाहरण मानता है:-

"Lutes, laurels, seas of mild and ships of amber".

और शेक्सपियर की निम्न पंक्तियों का कल्पना का उदाहरण :

"What have his daughters brought him to this pass ?"

कालरिज ने फैंसी को सन्निपात (delirium) और कल्पना को सनक(mania)/कहा है। सन्निपात की अवस्था में विभिन्न विरोधी भाव सहयोगी हो जाते हैं जबकि सनक की अवस्था में मन और मस्तिष्क में केवल एक ही भाव हावी रहता है। फैंसी का संबंध मस्तिष्क से होने के कारण वह निर्जीव व यांत्रिक होती है। कल्पना का संबंध आत्मा और मन से होता है। अतः वह सजीव और आत्मिक होती है। फैंसी में वस्तुओं का एकत्रीकरण हो जाता है, भले ही वे अक्रमिक हों।

---

1. Prelude, page 255-56.

कल्पना बहिर्जगत (पदार्थ) और अन्तर्जगत (चेतना) का सफल संयोजन करती है तथा पदार्थों और वस्तुओं में चेतना का संचार कर उन्हें जीवन्त रूप में प्रस्तुत करती है। कल्पना ही काव्य और दर्शन को जोड़ती है। मनुष्य की कल्पना ब्रह्म - कल्पना, अर्थात ईश्वर की सर्जना-शक्ति की प्रतिबिम्ब है। दूसरे शब्दों में, कल्पना ससीम में असीम की चिरन्तन सर्जना-शक्ति की आवृत्ति है। जो कार्य ब्रह्म - कल्पना करती है वही मनुष्य कल्पना। अन्तर केवल यही है कि एक का कार्य विस्तृत है जबकि दूसरे का सीमित। इस प्रकार मनुष्य और मनुष्य जगत में संश्लेषण का कार्य करती है - कल्पना।

कल्पना के दो प्रकार हैं :- प्रारम्भिक और विशिष्ट। प्रारंभिक कल्पना जीवन्त-शक्ति और सम्पूर्ण मानवीय ज्ञान का मूल हेतु (living power and prime agent of all human) मानता है। विशिष्ट कल्पना इसी की प्रतिध्वनि होती है। इन दोनों में प्रकार-भेद नहीं, केवल कोटि भेद है और कार्य - पद्धति का भेद होता है। विशिष्ट कल्पना प्रारम्भिक कल्पना का सजग मानवीय प्रयोग है। प्राथमिका कल्पना मनुष्य की इच्छा की सजगता के बिना ही कार्य करती है, किन्तु विशिष्ट कल्पना में इच्छा की सजगता से ही कार्य होता है।

कल्पना कवि का अनिवार्य गुण है। काव्य में प्रकृति अथवा जीवन का यांत्रिक अनुकरण तो प्रकृति से चोरी (theft from nature) है। काव्य की महत्ता पुनःसृजन में, जीवन का सजीव रूपान्तर प्रस्तुत करने में है।

कीट्स की धारणा :

कीट्स ने कल्पना की तुलना एडम के स्वप्न से की है। उसके अनुसार सत्य से कल्पना का वैर नहीं है। कल्पना रहित सत्य वास्तव कुत्सित (vulgar realism) या यांत्रिक सत्य कहलाता है। सत्य से हीन कल्पना कोरा स्वप्न है। कल्पना और सत्य

का संयोग विशुद्ध कविता है। यह अपनी पूर्ण स्थिति पर पहुंचकर मानव के लिए शिव बन जाती है, और अमर हो जाती है। इस स्थिति पर ही सुन्दर (कल्पना) और सत्य (वास्तव) में एक रूप होते हैं।[१]

छायावादी काव्य में 'फेंसी'

छायावादी काव्य में 'फेंसी' या अति कल्पना का प्रचुर प्रयोग हुआ है। कवियों ने कितनी ही पंक्तियां बिना किसी वस्तु-सम्पृक्त आधार के लिख दी है:-

(१) 'नग्न गगन की शाखाओं में
फैला मकड़ी का सा जाल
अम्बर के उड़ते पतंग को
उलझा लेते हम तत्काल।' (पंत: बादल)

(२) 'है स्वर्ण-नीड़ मेरा भी जग-उपवन में,
मैं खग सा फिरता नीरव भाव-गगन में,
उड़ मृदुल कल्पना पंखों में, निर्जन में,
चुगता हूं दाने बिखरे तृन में, कन में।' (वीणा)

छायावादी काव्य में 'कल्पना'

कल्पना के दो प्रमुख रूप छायावादी काव्य में मिलते हैं:- पुनर्निमायक या ग्रहणात्मक कल्पना और रचनात्मक कल्पना। पुनर्निमायक कल्पना अतीत की घटनाओं,

---

१ - महाकवि कीट्स का काव्य लोक : यतेन्द्र कुमार : पृष्ठ ३२।

प्रसंगों और भावनाओं के आधार पर रमणीय और काव्यात्मक रूप छवियां प्रस्तुत करती हैं। इसके तीन भेद हैं :-

१ - स्मृति निर्भर कल्पना

२ - स्मृत्याभास निर्भर कल्पना और

३ - प्रत्यभिज्ञा निर्भर कल्पना

१ - स्मृति निर्भर कल्पना :

अतीत की घटनाओं और अनुभूतियों की स्मृति के माध्यम से कवि नए-नए मानसिक बिम्बों का निर्माण करता है। पंत की ` हिमाद्रि ` शीर्षक कविता इसका अच्छा उदाहरण है।

२ - स्मृत्याभास - निर्भर कल्पना :

जहां परोपलब्ध स्मृति से कल्पना का जागरण हो वहां स्मृत्याभास कल्पना होती है। ` राम की शक्ति पूजा ` में निराला की निम्नांकित पंक्तियां इसका अच्छा उदाहरण है :-

` ------ याद आया उपवन
विदेह का, प्रथम-स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का - नयनों से गोपन - प्रिय - सम्भाषण -
पलकों का पलकों पर प्रथमोत्थान पतन -
कांपते हुए किसलय, झरते पराग-समुदाय -
गाते खग नव-जीवन परिचय, मरु - मलय - वलय
ज्योति : प्रपात स्वर्गीय, ज्ञात छवि प्रथम-स्वीय
जानकी नयन - कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय। ` (अपरा)

३ - प्रत्यभिज्ञा - निर्भर कल्पना :

इसमें प्रत्यक्ष और स्मृति दोनों का योग रहता है। इसमें वर्तमान का आधार तो होता है किन्तु स्मृतियां सब पुरानी हुआ करती हैं। निराला की 'दिल्ली' और प्रसाद की 'अरी वरुणा की शान्त कछार' इसकी उदाहरण है। एक उदाहरण निराला से लें :-

'बांधो न नाव इस ठांव, बन्धु
पूछेगा सारा गांव, बन्धु
यह घाट वही जिसपर हंसकर
वह कभी नहाती थी धंसकर।' (अपरा)

रचनात्मक कल्पना :

इसके भी निम्न भेद किए गये हैं :-

१ - विभाव विधायक कल्पना
२ - तद्भव कल्पना
३ - अनुमानाश्रित कल्पना
४ - सर्जनात्मक कल्पना
५ - मुक्त यादृच्छिकी कल्पना।

१ - विभाव विधायक कल्पना :

साधारणीकरण की असाधारण क्षमता से युक्त सामान्य आलम्बन खड़ा कर देने वाली कल्पना ही विभाव विधायक कल्पना है। महादेवी का प्रकृति

का सद्यः स्नात रूप इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण है :-

'उच्छ्वसित वक्ष पर चंचल है
बक पांतों का अरविन्द-हार,
तेरी निःश्वासें छू भू को
बन-बन जाती मलयज-बयार,
केकी रव की नूपुर ध्वनि सुन
जगती जगती की मूक प्यास
रूपसि, तेरा घनकेश पाश ।' (नीरजा)

२ - तद्भव कल्पना :

जहां एक कल्पना-प्रसूत अनेक कल्पनाएं उत्तरोत्तर आती चली जाएं वहां तद्भव कल्पना होती है, उदाहरणार्थ -

'तार भी, आघात भी, झंकार की गति भी,
पात्र भी, मधु भी, मधुपभी, मधुर विस्मृति भी,
अधर भी हूं और स्मित की चांदनी भी हूं।' (नीरजा)

३ - अनुमानाश्रित कल्पना :

कल्पना में जब अनुमान का संश्रय लिया जाता है, तो उसे अनुमानाश्रित कल्पना कहते हैं :-

'मुस्काता नभ संकेत भरा
अलि, क्या प्रिय आने वाले हैं ?' (आधुनिक कवि - २)

४ - सर्जनात्मक कल्पना :

स्मृति - अप्रधान तथा दो भिन्न वस्तुओं में संबंध स्थापन कराने वाली कल्पना को सर्जनात्मक कल्पना कहते हैं। जैसे स्वर्ण और मृग दो भिन्न वस्तुएं हैं, परन्तु

उनके संयोग से स्वर्ण-मृग की कल्पना होती है, वैसे यहां भी :-

'शशि के दर्पण में देख - देख
सुलझाकर मैंने तिमिर केश
गूंथे चुन तारक - परिजात
अवगुंठन कर किरणें अशेष ।'

5 - मुक्त यादृच्छिकी कल्पना :

यह विशुद्ध कवि मस्तिष्क - जन्य होती है । उदाहरण के लिए पंत की यह कविता :-

'हम सागर के धावल हास हैं
जल के धूम, गगन की धूल,
अनिल फेन, उषा के पल्लव
वारि वसन, वसुधा के मूल,
नभ में अवनि, अवनि में अंबर
सलिल भस्म, मारुत के फूल,
हम ही जल में थल, थल में जल
दिन के तम, पावक के तूल ।' (पल्लव)

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि छायावादी कविता का प्रमुख उपादान कल्पना है । छायावादी में कविता में इसका एक स्वतंत्र लोक ही संसृष्ट हुआ है जो एक स्वतंत्र अध्ययन की अपेक्षा रखती है । समस्त हिन्दी काव्य जगत में जितनी विशद कल्पना सृष्टि छायावादी काव्य में है उतनी अन्यत्र नहीं । वस्तुतः कल्पना के क्षेत्र में छायावादी काव्य अप्रतिम और अद्वितीय है ।

ग - काव्य का उद्देश्य

किसी भी कार्य को करने का कोई उद्देश्य होता है, उसका प्रयोजन होता है और उसका एक लक्ष्य होता है। कवि भी अपने कर्म में प्रवृत्त होता है और उसका भी कोई उद्देश्य होता है। यह विवाद का विषय है कि काव्य का उद्देश्य क्या हो। पाश्चात्य और भारतीय दोनों ही काव्य शास्त्रियों ने इस विषय पर अपने-अपने ढंग से विचार किए हैं।

पाश्चात्य मत :

पाश्चात्य चिन्तकों ने काव्यकला को ललित कलाओं में सर्वश्रेष्ठ माना है। अरस्तू ने शिक्षा, आनन्द और विरेचन द्वारा मन: स्वास्थ्य की प्राप्ति को काव्यवाद का प्रयोजन माना। अन्य पाश्चात्य चिन्तकों ने बड़े विस्तार पूर्वक इसका वर्णन किया है। उनके मतों का संक्षिप्त वर्णन यहां दिया जा रहा है :-

' कला कला के लिए, कला जीवन के लिए, कला जीवन में प्रवेश के लिए, कला जीवन से पलायन के लिए, कला सेवा के लिए, कला आत्मानुभूति के लिए, कला विनोद के लिए, कला सृजन की अदम्य आवश्यकता पूर्ति के लिए तथा कला आनन्द के लिए।

भारतीय मत :

प्राचीन भारतीय काव्य शास्त्री भरत ने दृश्य काव्य का प्रयोजन जन सामान्य का मनोरंजन माना है - ' विनोद जननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति। ' भामह के अनुसार काव्य का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, कलाओं में वैचक्षण्य, कीर्ति और प्रीति की प्राप्ति है :-

' धर्मार्थ काम मोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्ति प्रीतिंच साधु काव्य निवन्धनम्। '[१]

---

१ - भामह : काव्यालंकार।१।२

वामन ने प्रीति और कीर्ति को प्रमुखता दी:- 'काव्यं सद्दृष्टा दृष्टार्थ प्रीति कीर्ति हेतुत्वात् ।'[1] रुद्रट ने धन-प्राप्ति, विपत्ति - नाश, असाधारण-आनन्द, आप्त कामना, धर्मार्थ काम-मोक्ष की प्राप्ति आदि को काव्य-प्रयोजनों को मान्यता दी है ।[2] आनन्द वर्धन प्राप्ति को महत्व देते हैं :- 'तेन ब्रूम सहृदयमन: प्रीतये तत्स्वरूप ।'[3] कुन्तक के अनुसार -

'धर्मादि साधनोपाय: सुकुमार क्रमोदित: ।
काव्य बन्धो भिजातानां हृदयाह्लादकारक: ।'[4]

मम्मट ने 'काव्य-प्रकाश' में यश, अर्थ, व्यवहार-ज्ञान, अनिष्टनिवारण, आनन्द तथा कान्ता सम्मित उपदेश काव्य के प्रयोजन माने ।[5]

उपर्युक्त सभी भारतीय आचार्यों के काव्य-प्रयोजनों को ध्यान में रखकर हम निम्न निष्कर्ष पर आते हैं - धर्म, अर्थ, मोक्ष, यश, व्यवहार-ज्ञान, अनिष्ट-निवारण कान्ता-सम्मित उपदेश, काव्य कला नैपुण्य, मनोरंजन आदि ही काव्य के प्रयोजन हैं ।

छायावाद पूर्व हिन्दी साहित्याचार्यों के भी काव्य-प्रयोजन विषयक अपना मत रहा है । महाकवि तुलसीदास ने काव्य का प्रयोजन 'स्वान्त:सुखाय' तथा 'स्वान्त: तम: शान्तये' माना । एक स्थल पर वे घोषित करते हैं :-

'कीरति, भणिति, भूति भक्ति सोई ।
सुरसरि सम सब कंह हित होई ।'

रीतिकाल के प्रसिद्ध आचार्य और कवि भिखारीदास ने काव्य के अनेक प्रयोजन स्वीकार किये हैं । कुछ सूर और तुलसी की भांति काव्य-साधना के रूप में तपस्याओं का फल

१ - काव्यालंकार सूत्र ।१।१।५
२ - रुद्रट : काव्यालंकार, १।४, १।८, १२।१
३ - ध्वन्यालोक । १।१।
४ - वक्रोक्ति जीवित : १।३
५ - मम्मट : काव्य प्रकाश :१।२

प्राप्त करते हैं, कुछ को रसखान और रहीम की भांति केवल यश से ही प्रयोजन होता है। दास के विचार से कविता की चर्चा बुद्धिमान को सभी स्थानों पर सुखदायी सिद्ध होती है। इस संबंध में भिखारी दास का यह छन्द है :-

'एक लहैं तप पुंजन्ह के फल ज्यों तुलसी अरु सूर गोसाईं।
एक लहैं सुख-संपत्ति केशव, भूषन ज्यों बर बीर बड़ाईं।
एकन्ह को जस ही सों प्रयोजन, है रसखान रहीम की नाईं।
दास कवित्तन्ह की चरचा बुद्धिवन्तह को सुख दै सब ठाईं।'

इस प्रकार रीतिकाव्य में भी काव्य-प्रयोजनों की चर्चा होती रही। द्विवेदी-युग के प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त ने समाज-हित को काव्य का प्रयोजन माना -

'मानते हैं जो कला को कला के अर्थ ही,
स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही।'

द्विवेदी युग के काव्य-प्रयोजनों की चर्चा पिछले अध्याय में की जा चुकी है। इसके पश्चात् छायावाद युग आता है जहां समस्त प्रयोजन ही बदल गये।

छायावादी कवियों के मत :

'प्रसाद' जी काव्य - प्रयोजनों में आनन्द को सर्वश्रेष्ठ माना है। 'कविता के आस्वाद करने वाले के हृदय में एक अपूर्व आह्लाद होता है - - - - उसके सम्मुख केवल एक स्वप्रकाशानन्द ही रहता है।'[१] प्लेटो का शिष्य अरस्तू कला को अनुकरण मानता है। लोकोत्तर आनन्द की सत्ता का विचार ही नहीं किया गया। उसे तो

---

१ - इन्दु : कार्तिक, संवत् १९६७, पृष्ठ १२३-२४।

शुद्र दर्शन के लिए सुरक्षित रखा गया ।[१] रसात्मक अनुभूति आनन्द - मात्रा से सम्पन्न थी और तब नाटकों में शुद्र का आवश्यक प्रयोग माना गया ।[२] उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि प्रसाद जी ने आनन्द को काव्य का आवश्यक उपकरण माना है । वे लोक शिक्षा को भी काव्य का लक्ष्य मानते हैं :-

` संसार को काव्य से तरह-तरह के लाभ पहुंचते हैं :- मनोरंजन और शिक्षा -- शिक्षा का अंश साहित्य के सब अंगों से संबंध रखता है । अत:वह अंश रूप से प्राय: सत्कविता में मिलेगा ।[३]

त्र इस प्रकार ` प्रसाद ` जी के अनुसार काव्य के दो प्रयोजन हैं : आनन्द और शिक्षा ।

निराला ने भी ` प्रसाद की तरह आनन्द को काव्य का प्रमुख उद्देश्य माना । इसके बाद वे काव्य की हितात्मकता पर भी ध्यान देते हैं । काव्य से प्राप्त होने वाली आनन्द के विषय में वे कहते हैं कि -` फूलों का मुख्य गुण है उनका सुगन्ध, कृति का मूल गुण है उसकी रोचकता ।`[४] यहां पर निराला जी ने ` रोचकता ` का उल्लेख किया है जो किसी और वस्तु के लिए नहीं, अपितु स्वसंपाद्य आनन्द के लिए है । ` साहित्य लोक से - सीमा से - प्रान्त से - देश से - विश्व से ऊंचा उठा हुआ है । इसी लिए वह लोकोत्तरानन्द दे सकता है । लोकोत्तर का अर्थ है ` लोक ` जो कुछ भी दीख पड़ता है उससे और दूर तक पहुंचा हुआ । ऐसा साहित्य मनुष्य मात्र का साहित्य है, केवल भाषा का एक देशगत आवरण उस पर रहता है ।`[५] `चाबुक ` में वे व्रजभाषा समर्थकों पर कसकर प्रहार करते हैं - ` वे तो सिर्फ मनोरंजन के लिए काव्य रचते हैं, किसी उत्तरदायित्व को लेकर नहीं, उनकी आंखों में दूर तक फैली हुई निगाह नहीं है - - - - - कौन से भाव सर्वजनीय और कौन से एक देशीय उन्हें पता नहीं ।` वे

---

१ - काव्यकला तथा अन्य निबंध : पृष्ठ २३ ।
२ - तदेव : पृष्ठ ७१ ।
३ - इन्दु, कला १, किरण ११, ज्येष्ठ सं0 १६६७, पृष्ठ १८१-८२ ।
४ - चयन : पृष्ठ ५२ ।
५ - प्रबन्ध-प्रतिमा : पृष्ठ २५६ ।

उपदेशात्मकता को काव्य का प्रयोजन नहीं मानते । 'उपदेश को मैं कवि की कमजोरी मानता हूँ ।'[१] अन्य काव्यशास्त्रियों की तरह वे काव्य का प्रयोजन यश नहीं मानते । कवि का कर्तव्य यही है कि सात्विक हृदय से काव्य रचना करे, यश के पीछे भटकना उसका कर्तव्य नहीं ।

इस प्रकार निराला जी आनन्द और लोक-हित को काव्य का प्रमुख प्रयोजन मानते हैं ।

पंत जी ने भी काव्य के बाह्य-प्रयोजनों की चिन्ता न करके केवल आन्ि आन्तरिक प्रयोजनों की ओर ही ध्यान दिया है । उन्होंने लोक-मंगल को ही काव्य का मुख्य उद्देश्य स्वीकार किया है । वे 'स्वांत: सुखाय' और 'बहुजन हिताय' में कोई अन्तर नहीं मानते । 'एक विकसित कलाकार के व्यक्तित्व में स्वान्त: और बहुजन में आपस में वहीं संबंध रहता है जो गुण और राशि में और एक के बिना दूसरा अधूरा है ।'[२] 'ग्राम्या' में भी कवि कहता है कि :-

'पृथ्वी से खोद निराओ, कवि
मिथ्या विश्वासों के तृण खर
सींचो अमृतोपम वाणी की,
धारा से मन, भव हो उर्वर ।'

'भव हो उर्वर' में लोक हित या लोक मंगल की भावना ही झलकती है । इसीलिए उन्होंने कहा कि मैं चाहता हूं कि स्वाधीन भारत की कलाकृतियाँ लोकोपयोगी सांस्कृतिक तत्वों से ओत-प्रोत रहें और नवयुवक कलाकार अपनी कलाओं के माध्यम द्वारा समाज में नवीन आत्म चेतना के आलोक को विकसित करें एवं लोक जीवन को बाहर भीतर से संस्कृत सुरुचिपूर्ण तथा सम्पन्न बनाने में सहायक हों ।[३] तात्पर्य यह कि पंत जी ने काव्य में लोक-मंगल को प्रमुख प्रयोजन माना है ।

---

१ - प्रबन्ध प्रतिमा : पृष्ठ २८४ ।
२ - गद्य पथ : पृष्ठ १४२ ।
३ - गद्य पथ : पृष्ठ २०४ ।

काव्य के उद्देश्यों पर प्रसिद्ध छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा ने विस्तार से विचार किया है। वे 'स्वान्त: सुखाय' को प्रमुख मानती हैं, परन्तु वे इसकी एक नवीन व्याख्या कर जाती हैं जो 'आत्म परिष्कार' का पर्यायवाची है। उनके मत से काव्य कवि को भाव-संवेदन, नवीन सौन्दर्य बोध और अभिनव जीवन-दर्शन की विभूतियां प्रदान करता है :-

'अपने सृजन से साहित्यकार स्वयं भी बनता है, क्योंकि उसमें नये संवेदन जन्म लेते हैं, नया सौन्दर्य बोध उत्पन्न होता है, नए जीवन दर्शन की उपलब्धि होती है। सारांश यह है कि वह जीवन की दृष्टि से समृद्ध होता जाता है, इसी से साहित्य सृष्टि का लक्ष्य स्वान्त:सुखाय का विरोधी नहीं हो सकता।'[१]

उनके अनुसार काव्य का एक और प्रयोजन है - सामाजिक - चेतना। 'साहित्य का उद्देश्य समाज के अनुशासन के बाहर स्वच्छन्द मानव स्वभाव में, उसकी मुक्ति को अक्षुण्ण रखते हुए, समाज के लिए अनुकूलता उत्पन्न करना है।'[२] महादेवी जी ने मुख्यत: ये ही दो काव्य के प्रयोजन स्वीकार किये हैं। काव्य से अर्थ - प्राप्ति होती है, इसका वे सदैव से विरोध करती रही हैं :-

'यदि साहित्य को आजीविका की दृष्टि से स्वीकृत कोई एक व्यापार मान लिया जावे, तो न व्यक्ति की प्रतिभा-विशेष के लिए मुक्ति क्षितिज मिल सकता है और न उक्त कर्म से उसके अविच्छिन्न लगाव को उचित कहा जा सकता है।'[३] इसीलिए वे 'स्मृति की रेखाएं' में कहती हैं कि कवि अपनी श्रोता मंडली में किन गुणों को अनिवार्य समझता है, यह प्रश्न आज नहीं उठता पर अर्थ की किस सीमा पर वह अपने सिद्धान्तों का बोझ फेंक कर नाच उठेगा, इसका उत्तर सब जानते हैं। उसकी इच्छा अर्थ क्षेत्र में जितनी मुक्त है, वह श्रोताओं की इच्छा का उतना ही अधिक बन्दी है।

---

१ - क्षणदा : पृष्ठ ११८-१६।
२ - क्षणदा : पृष्ठ १२२।
३ - वही पृष्ठ ११५।

निष्कर्षतः वे स्वान्तः सुखाय (आनन्द या आत्म परिष्कार) और लोकहित की साधना को काव्य का मुख्य प्रयोजन मानती हैं ।

निष्कर्ष :

ऊपर वर्णन किए गये छायावाद के प्रमुख चार कवियों का काव्य प्रयोजन विषयक अध्ययन करने पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि छायावादी काव्य में आनन्द और लोक मंगल की भावना - ये दो ही प्रमुख काव्य प्रयोजन हैं ।

छायावादी काव्य में ` आनन्द `

छायावादी काव्य में ` आनन्द ` की बड़ी व्यापक संसृष्टि हुई है । ` प्रसाद में यह ` आनन्दवाद `, पंत में ` मनः संगठन `, निराला और महादेवी में अद्वैतवाद के रूप में व्यक्त हुआ है ।

प्रसाद में ` आनन्दवाद ` का अपना ही स्वरूप है । उन्होंने ` आनन्द ` का बार-बार उल्लेख किया है, यथा - ` यही जड़ का चेतन आनन्द `, ` कर रही लीलामय आनन्द `, ` आनन्द समन्वित होता था `, ` रस के निर्झर में धंसकर मैं, आनन्द शिखर के प्रति बढ़ती `. ` आनन्द अखण्ड घना था `, ` पिंगल पराग से मचले, आनन्द सुधा रस छलके ` आदि । ` प्रसाद ` जी शैव मतावलम्बी थे और शैववाद की सिद्धि उन्होंने कामायनी में आदि से अन्त तक की है । प्रसाद जी के अनुसार यह समस्त विश्व ही शिव रूप है । उन्होंने सृष्टि का नियमन - शासन करने वाली महाशक्ति को शिव रूप में देखा है और प्रकृति में उसके स्थूल रूपका आभास दिया है :-

` अपने सुख-दुख से पुलकित
यह मूर्त विश्व सचराचर
चिति का विराट वपु मंगल
यह सत्य सतत चिर सुन्दर ।` (कामा० आनन्दसर्ग)

एक स्थल पर और भी वे लिखते हैं कि :-

> " चिति का स्वरूप यह नित्य जगत
> वह रूप बदलता है शत-शत । "

प्रकृति में शिव के स्थूल रूप की व्यंजना " कामायनी " में यत्र-तत्र हुई है । इड़ा पर अत्याचार करने को उद्यत मनु को रुद्र-हुंकार सुनाई पड़ती है । एक स्थल पर हिमाच्छादित धवल गिरिराज, और उसकी गोद में लहरें लेती मानसी को शिव और गौरी के रूप में प्रस्तुत किया गया है । यहां तक वे भारतीय अद्वैतवाद " एक तत्व की ही प्रधानता " से प्रभावित हैं । परन्तु एक छायावादी कवि होने के नाते वे किसी भी लीक पर नहीं चलते । उनकी यह विचारधारा शंकराचार्य के अद्वैतवाद से मेल नहीं खाती । शंकराचार्य ने " सत्यं ब्रह्म जगन्मिथ्या " कहा, तो प्रसाद ने संसार को सत्य माना -

> " तप नहीं केवल जीवन सत्य । "

दु:ख है - बुद्ध जी की ऐसी स्वीकृति को भी वे अंगीकार नहीं करते -

> " दु:ख की पिछली रजनी बीच
> विकसता सुख का नवल प्रभात,
> एक परदा यह झीना नील
> छिपाये हैं जिसमें सुखगात । "

" प्रसाद " जी ने दु:खों को अभिशाप नहीं, वरदान मानते हैं :-

> " जिसे तुम समझे हो अभिशाप
> जगत की ज्वालाओं का मूल ।
> ईश का वह रहस्य वरदान
> कभी मत इसको जाओ भूल । "

`प्रसाद` जी का कथन है कि विश्व में जो कुछ है आनन्द है जो शिवतत्व से सम्भूत है। इस `आनन्द` की उपलब्धि कैसे हो? इसके लिए `प्रसाद` जी ने `सामरस्य` के सिद्धान्त को अपनाया है। समरसता से तात्पर्य है - द्वन्द्व का अभाव। कामायनी में `प्रसाद` जी ने सुख-दुख, स्त्री - पुरुष, राजा - प्रजा, जड़-चेतन, गुण दोष आदि के बीच अभेद-दृष्टि रखा है, इनमें द्वन्द्व का अभाव स्थापन किया है। श्रद्धा सर्ग में उन्होंने सुख-दुःख को विकास का सत्य मानकर दोनों का स्वागत किया है:-

`यही दुःख - सुख विकास का सत्य
यही भूमा का मधुमय दान।`

स्त्री पुरुष के द्वन्द्व का समाधान प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं कि :-

`तुम भूल गए पुरुषत्व मोह में, कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता है संबंध बनी, अधिकार और अधिकारी की।`

जड़-चेतन के बीच अभेद स्थापित करते हुए `आनन्द` की दृष्टि में वे कहते हैं :-

`समरस थे जड़ या चेतन
सुन्दर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती
आनन्द अखण्ड घना था।`

अंत में कामायनी ने आनन्दोपलब्धि के लिए यह संदेश दिया है:-

`सब भेद भाव भुलवा कर
दुख सुख को दृश्य बनाता।
मानव कह रे। `यह मैं हूं`
यह विश्व नीड़ बन जाता।`

`प्रसाद की तरह `निराला` जी भी आनन्द की बातें करते हैं। निराला जी ने अपनी कविताओं में इसी आनन्द का बार-बार उल्लेख किया है :-

१ - मुक्त हो सदा ही तुम
बंधा-विहीन छन्द ज्यों
डूबे आनन्द में सच्चिदानन्द रूप` (अपरा)

२ - सुधाधर की कला में, अंशु यदि बनकर रहूं,
तो अधिक आनन्द है। (पंचवटी - प्रसंग)

३ - आनन्द बन जाता हेय है
श्रेयस्कर आनन्द पाना है। (वही)

४ - मानस-सरोवर के स्वच्छ वारि कण समूह
दिनकर कर स्पर्श से
सूक्ष्माकार होते जब -
धरते अव्यक्त रूप
कुछ काल के लिए नील नभो मंडल में
लीन से हो जाते हैं - गाते अव्यक्त राग
किन्तु क्या आनन्द उन्हें मिलता है, जाने वे। (पंचवटी प्रसंग)

५ - व्यष्टि और समष्टि में समाया वही एक रूप,
चिद्घन आनन्द कन्द। (वही)

६ - पार कर रेखा जब समष्टि अहंकार की
चढ़ता है सप्तम सोपान पर,
प्रलय तभी होता है
मिलता वह अपने सच्चिदानन्द रूप से । (पंचवटी प्रसंग)

७ - ज्योतिर्मय चारो ओर
परिचय सब अपना ही
स्थित में आनन्द में चिरकाल
जाल मुक्त । (जागरण)

पंत में यह ` आनन्द ` मन: संगठन के रूप में आया है । महादेवी वर्मा में पुन: यह अद्वैतवादी दर्शन से निसृत हुआ है । यों तो महादेवी जी बुद्ध के दु:ख और करुणावादी से प्रभावित हैं, परन्तु बुद्ध जी में केवल दु:खी की ही स्वीकृति है वहीं महादेवी जी दु:ख को ही आनन्द समझ लेती हैं । उन्हें दु:ख सहने में आनन्दानुभूति होती है और वे प्रिय-विरह में शाश्वत जलती ही रहना चाहती हैं :-

` नित प्रति जलते रहने दो, अपनी ज्वाला में मेरा उर ।
इसकी विभूति में आकर, अपने पद चिन्ह बन जाना । `

प्रिय-विरह-अग्नि जलकर भस्म होने के बाद प्रिय आयेंगे और भस्म पर उनके चरण अवश्य पड़ेंगें और इस प्रकार कवियित्री उन चरणों के स्पर्श-आनन्द का अनुभव सदा-सदा करती रहेंगी। यहां चिर-आनन्द की आकांक्षा है । इसीलिए वे मिलन का नाम नहीं लेती:-

` मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूं । `

कुल मिलाकर, छायावादी काव्य में आनन्द तत्व उसका प्रमुख उद्देश्य है जो प्रसाद जी को शैव-दर्शन के समरसता सिद्धान्त से, पंतजी को मन: संगठन और निराला तथा महादेवी जी को अद्वैतवादी दर्शन से प्राप्त होता है ।

छायावादी काव्य में ` लोक - मंगल `

लोक - मंगल छायावादी काव्य का दूसरा प्रयोजन है। छायावादी काव्य अन्तर्मुखी था, फिर भी वह लोकोन्मुख था। यह वह कोरा पलायन वादी नहीं है ये कवि यदि कल्पना के पंख लगाकर उड़े तो इनकी दृष्टि पृथ्वी से हटी नहीं। इन्हें लोक मंगल इष्ट था, आत्म-मंगल नहीं। इसीलिए इनका दर्शन भी लोक मंगल को केन्द्र मानकर ही पल्लवित हुआ।

जयशंकर प्रसाद ने प्रारम्भ से ही लोक-मंगल को अपना लक्ष्य बना रखा है :-

` परिश्रम करता हूं अविराम, बनाता हूं क्यारी औ कुंज।
सींचता दृग जल से सानन्द, खिलेगा कभी मल्लिका पुंज। (भरना:पृष्ठ २४)

यहां कवि की परमार्थ भावना व्यंजित हुई है। ` प्रत्याशा ` में वे औरों की संवर्द्धना लोक-मंगलार्थ ही करते हैं -

` हां - हां, औरों की भी हो संवर्द्धना। ` (भरना : पृष्ठ ५१)

` आंसू ` में कवि ने अपने अश्रुकणों से मानो लोक मंगल का ही सिंचन किया है। मंगल की अभ्यर्थना करते हुए कवि कहता है कि :-

` मंगल किरणों से रंजित
मेरे सुन्दरतम जागो। `

और भी -

` सबका निचोड़ तुम लेकर
सुख से सूखे जीवन में।
बरसो प्रभात हिम कण सा
आंसू इस विश्व सदन में।

`लहर` में भी वे दुःख समुच्चय का नाश और विश्व मानवता का जयघोष चाहते हैं:-

`छोड़ जीवन के अतिवाद, मध्य पथ से ले सुगति सुधार
दुःख का समुदाय, उसका नाश, तुम्हारे कर्मों का व्यापार
विश्व - मानवता का जयघोष, यहीं पर हुआ जलद-स्वर-मन्द्र
मिला था वह पावन आदेश, आज भी साक्षी है रविचन्द्र ।`

(लहर : पृष्ठ १३)

`कामायनी में तो मंगल की जो भावना आद्यन्त उपस्थित है वह किसी भी आधुनिक कृति में नहीं । समस्त संसार को सुखी बनाने हेतु श्रद्धा मनु से कहती है :-

`औरों को हंसते देखो मनु,
हंसो और सुख पावो ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो,
सब को सुखी बनाओ ।` (कामायनी : कर्म)

प्रसाद जी ने अखिल - मानव - मात्र को सुख प्राप्ति एवं विश्व में सुख - समृद्धि हेतु समस्त भेदों को भुलवा कर, सुख और दुःख को समान समझने का संदेश दिया है :-

`सब भेद-भाव भुलवा कर
दुःख सुख को दृश्य बनाता
मानव कह रे ! यह मैं हूं
यह विश्व नीड़ बन जाता । (कामायनी : आनन्द)

इस प्रकार `कामायनी` में `एक पुरुष` के भींगे नयनों की अंतिम परिणति उस आनन्द लोक में होती है जिसमें :-

`शापित न यहां है कोई
तापित पापी न यहां है
जीवन - वसुधा समतल है
समरस है जो कि जहां है । (वही)

पंत जी ने ` परिवर्तन ` नाम्नी कविता में ` लोक-सेवा ` का प्रसंग चलाकर लोक मंगल की बातें करते हैं :-

` वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप
हृदय में बनता प्रणय अपार
लोचनों में लावण्य अनूप
लोक - सेवा में शिव अविकार । (पल्लव : पृष्ठ १५८)

वे जाति, कुल, वर्ण, व्यक्ति एवं राष्ट्रगत राग-द्वेष से मुक्त होने का सन्देश देते हैं, क्योंकि इसी में लोक मंगल निहित है :-

` झरें जाति - कुल - वर्ण - वर्णधन, अंध नीड़ से रूढ़ि रीति छन,
व्यक्ति राष्ट्रगत, राग-द्वेष रण, झरें झरें विस्मृति में तत्क्षण ।`

(युग पथ : पृष्ठ १२)

एक कविता में वे ` समता के दाने ` बोना चाहते हैं क्योंकि इसी से विश्व मंगल संभव है :-

` रत्न-प्रसविनी है वसुधा, अब समझ सका हूं
इसमें सच्ची समता के दाने बोने हैं ` (रश्मिबंध, पृष्ठ ११२-१३)

विश्व कल्याणार्थ वे प्रेम का उन्मुक्त प्रसार चाहते हैं :-

` मनुज - प्रेम से जहां रह सके - मानव ईश्वर ।
और कौन सा स्वर्ग चाहिए तुझे धरा पर ? ` (रश्मिबंध, पृष्ठ ६६)

जग मंगल के लिए वे अपनी कविताओं में भौतिकता और आध्यात्मिकता दोनों का समन्वय चाहते हैं ।

'निराला' ने तो माना ही है कि साहित्य वह है जो मानव-जाति का उत्थान करे।[१] 'निराला' जी के काव्य में सर्वत्र लोक-मंगल का स्वरूप विविध रूपों में व्यक्त हुआ है। 'गीतिका' में वे कहते हैं :-

'काट अन्ध-उर के बन्धन-स्तर
बहा जननि ज्योतिर्मय निर्झर
कलुषभेद तम हर प्रकाश भर
जगमग जग कर दे।' (गीतिका)

यहां 'जगमग जग कर दे' से लोक-मंगल ध्वनित होता है। वह तोड़ता पत्थर, विधवा, दीन, भिक्षुक आदि कविताएं हठात् हमारी सहानुभूति को जीत लेती हैं। उन्होंने अपने अद्वैतवादी दर्शन का प्रयोग इसी हेतु किया है। जहां उन्होंने व्यंग्य लिखे हैं उनमें भी मूल स्वर सुधार का ही है जो लोक-मंगल का प्राथमिक रूप है। इस प्रकार पूरा निराला-साहित्य लोक-मंगल विधायक है।

सुश्री महादेवी वर्मा जो अध्यात्म के गीत गाती रही हैं, लोक-मंगल से कभी विमुख नहीं हुईं। उन्हें भी 'प्यासे सूखे अधरों' पर तरस आता है :-

'देखूं खिलती कलियां या,
प्यासे सूखे अधरों को
तेरी चिर यौवन सुषमा
या जर्जर जीवन देखूं।' (यामा : पृष्ठ १०१)

'यामा' के गीत में 'मरु हो जाये उर्वर' कह कर वे लोक-संग्रह की ही बात कहती हैं :-

'दु:ख हो सुखमय, सुख हो दु:खमय
उपल बने पुलकित से निर्झर
मरु हो जावे उर्वर गायक।
गा लेने दो क्षण भर गायक।' (यामा : पृष्ठ १५६)

---

१ - प्रबंध प्रतिमा : पृष्ठ २६० ।

इस प्रकार छायावादी काव्य में लोक-मंगल का सूत्र आद्यन्त विद्यमान है। छायावादी काव्य पर जो पलायन, वायवीयता और स्वप्निलता का आरोप होता है, उन सबका समाधान यहां हो जाता है।

निष्कर्ष :

वास्तुत: छायावादी काव्य का मुख्य उद्देश्य आनन्द है जिसका पर्यवसान लोक - मंगल में होता है। छायावाद का यह 'आनन्द तत्व' अपने समस्त पूर्ववर्ती युगों से भिन्न होकर आया। 'अब तक कवियों का उद्देश्य लोकोत्तरानन्द था, आधुनिक युग में कवियों का उद्देश्य लोक आनन्द बना। लोक - महत्व के कारण ही व्यक्ति और उसके लोक-संबंधी कार्यों की श्रेष्ठता घोषित हुई। आधुनिक ज्ञान, विज्ञान ने असीम भौतिक समृद्धि का निर्माण किया और दर्शन ने इस समृद्धि को नैतिक समर्थन प्रदान किया। फिर क्या था, भौतिक समृद्धि और मानव सत्य ही चरम सत्य बन गये। इन्हीं के माध्यम से व्यक्ति ब्रह्म का साक्षात्कार करने लगा और लोक - सुख पारलौकिक सुख का पर्याय बन गया। कवि स्वर्ग की कामना नहीं करते, मोक्ष की चिन्ता भी नहीं करते क्योंकि स्वर्ग या मोक्ष दोनों लोक में ही उतर आये। दर्शन का अद्वैत मानव लोक का अद्वैत बन गया और इसी की साधना प्रारम्भ हुई। ईश्वर भक्ति अब लोक -भक्ति बन गयी। इस प्रकार, विश्व दर्शन के अनुरूप वेदान्त दर्शन की व्याख्या हुई और लोक -परलोक का समन्वय इसी जगत में स्थापित किया गया। छायावादी काव्य इसी समन्वय भावना का परिणाम है।' [१]

---

१ - छायावादी काव्य और निराला : डा० शान्ति श्रीवास्तव : पृष्ठ १११।

घ - काव्य - वस्तु

'द्विवेदी युग की हिन्दी कविता वस्तुनिष्ठ या विषयनिष्ठ थी, विषय और वर्णन प्रधान थी । छायावाद व्यक्तिनिष्ठ एवं विषयी प्रधान काव्य के रूप में विकसित हुआ । उसमें अनुभूति और कल्पना की प्रधानता रही' [१] छायावाद की इस विशेषता की ओर डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का भी ध्यान गया और उन्होंने भी इसे विषयी प्रधान ही कहा है -

'१९०० - १९२० की खड़ी बोली कविता में विषय वस्तु की प्रधानता बनी हुई थी । परन्तु इसके बाद की कविता में कवि के अपने राग-विराग की प्रधानता हो गयी । विषय अपने आप में कैसा है, यह मुख्य बात नहीं थी, बल्कि मुख्य बात यह रह गयी थी कि विषयी (कवि) के चित्त के राग-विराग से अनुरंजित होने के बाद वह कैसा दिखता है ।' [२] इस प्रकार छायावादी काव्य में कवि की निजी अनुभूति और कल्पना व्यंजित है । अस्तु छायावादी काव्य में विषय की प्रधानता तो नहीं के बराबर है । यहां प्रधानता है तो अनुभूति की । तात्पर्य यह कि यह विषयी प्रधान काव्य है, विषय प्रधान नहीं । इसका तात्पर्य यह नहीं कि इसमें विषय है ही नहीं अथवा छायावाद विषय-विहीन काव्य है । किसी भी रचना का विषय ही उसकी रीढ़ है भले ऊपर से उस पर आवरण चढ़ा हो और वह आवृत हो । इसी प्रकार छायावादी काव्य में भी विषय वस्तु अवश्य है, भले ही उस पर रचनाकार की मनसा का आरोप है और इसी आरोप ने छायावाद के समस्त प्रतिपाद्य को ही परिवर्तित कर दिया है । इन कवियों ने विषय वस्तु को नए पर्यप्रेक्ष्य में देखा ।

'प्रसाद' का मत :

'प्रसाद' जी ने अपने काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य प्रेम और जातिय भावना माना है । इस संबंध में उनके विचार द्विवेदी युग की सामान्य काव्य दृष्टि के अनुरूप रहे हैं ।

१ - छायावाद : डा० रवीन्द्र भ्रमर : पृष्ठ ६२ ।
२ - हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास : पृष्ठ ४५५।

उन्होंने स्थूल श्रृंगार को अहितकर माना है । `श्रृंगार रस की मधुरता पानकरते करते आपकी मनोवृत्तियां शिथिल तथा अकुला गयी हैं । इस कारण अब आपको भावमयी, उत्तेजनामयी, अपने को भुला देने वाली कविताओं की आवश्यकता है । अस्तु धीरे-धीरे जातीय संगीतमयीवृत्ति स्फुरणकारिणी, आलस्य को भंग करने वाली, आनन्द बरसाने वाली, धीर गंभीर पद विक्षेपकारिणी शान्तिमय कविता की ओर हम लोगों को अग्रसर होना चाहिए ।`[1] यहां श्रृंगार से उनका तात्पर्य स्थूल श्रृंगार से है । स्पष्ट है कि उन्होंने श्रृंगार के अश्लील पक्ष को त्यागने पर बल दिया है । परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि सौन्दर्य-व्यंजना अथवा प्रेम व्यंजना उनका अभीष्ट है ।

काव्य वस्तु पर सामाजिक, राजनीतिक अवस्थाओं का प्रभाव पड़ता है । अत: प्रसाद जी ने रीति श्रृंगार की अतिशयता से विमुख होकर राष्ट्रीयता को स्थान देने पर बल दिया है । वर्ण्य के लिए अपेक्षित गुणों में - सजीवता, आनन्द, शान्ति प्रदान करने की क्षमता तथा गम्भीरता आदि का विवेचन है । `प्रसाद` के काव्य का अवलोकन करने से भी यही मिलता है कि उन्होंने अपने वर्ण्य का आधार केवल प्रेम और राष्ट्रीयता को माना ।

निराला का मत :

`निराला` जी ने प्रकृति और राष्ट्रीयता को काव्य का वर्ण्य माना है । कविता में विविध विषय होने चाहिए जिससे रचना में सजीवता और आनन्द की सृष्टि होती है - `साहित्य को जीवित रखने के लिए उसमें अनेक भाव, उनके चित्रों का रहना आवश्यक है और जबकि अपने-अपने स्थान पर सभी भाव आनन्दप्रद हैं और जीवन प्रदान

---

१ - इन्दु : श्रावण : संवत् १९६७ : पृष्ठ २४ ।

करने वाले हैं। '[१] काव्य में प्रकृति चित्रण के विषय में वे कहते हैं कि :-

' जो कवि और महाकवि होते हैं वे प्रकृति के हरेक कमरे में प्रवेश करने का जन्म सिद्ध अधिकार लेकर आते हैं ----- यही कारण है कि जड़-चेतन, सबकी प्रकृति कवि को अपना स्वरूप दिखा देती हैं। वे दर्पण हैं और प्रकृति का प्रत्येक विषय उन पर पड़ने वाला सच्चा बिम्ब है। '[२] यहां पर ' प्रकृति ' से निराला जी का तात्पर्य बाह्य और आंतर, जगत और जीवन दोनों परिलक्षित होता है।

काव्य के द्वितीय वर्ण्य राष्ट्रीयता के विषय में वे कहते हैं कि :-

' जिस समय से देश पराधीनता के पिंजड़े में बन-विहग की तरह बन्द कर दिया गया है। उस समय से लेकर आज तक की उसकी अवस्था का दर्शन, उससे सहानुभूति, उसकी अवस्था का प्रकटीकरण आदि उसके संबंध में जितने कम हैं, इनकी सीमा का कवि-कर्म की परिधि के भीतर ही समझी जाती है, क्योंकि प्रकृति का यथार्थ अध्ययन करने वाला कवि ही यदि देश की दशा का अध्ययन न करेगा तो फिर कौन करेगा ? '[३]

इस प्रकार निराला जी ने काव्य में प्रकृति चित्रण-वास्तविक प्रकृति और मानव प्रकृति -चित्रण तथा राष्ट्रीयता को उसका मुख्य प्रतिपाद्य माना है।

<u>सुमित्रानन्दन पंत का मत</u> :

पंत जी की कविता का मुख्य विषय रहा है - सौन्दर्य। अपने काव्य के उत्तरकाल में लोक -मानवता की ओर भी उन्मुख हुए हैं। प्रकृति तो उनके काव्य की

---

१ - चयन : पृष्ठ ६२।
२ - रवीन्द्र कविता कानन : पृष्ठ ५२।
३ - रवीन्द्र कविता कानन : पृष्ठ ५२।

प्रेरणा दात्री ही रही है। काव्य में प्रकृति का व्यवहार उन्हें सिद्धान्त रूप में भी इष्ट है :-

> ' छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
> तोड़ प्रकृति से भी माया।
> बाले, तेरे बाल-जाल में
> कैसे उलझा दूं लोचन।' (आधुनिक कवि - २, पृष्ठ १)

एक स्थल पर उनकी स्वीकारोक्ति है :-

> ' है स्वप्न नीड़ा मेरा भी जग-उपवन में
> मैं खग सा फिरता नीरव भाव-जगन में,
> उड़ मृदुल कल्पना-पंखों से, निर्जन में,
> चुगता हूं दाने बिखरे, तृण में कण में।'[1]

कलाकार के लिए प्रकृति चित्रण अत्यन्त आवश्यक है :-

> ' कलाकार के लिए, सत्य ही, विश्व - प्रकृति यह
> निखिल प्रेरणाओं की जननी है रहस्यमय।'[2]

पंत जी का दूसरा प्रतिपाद्य लोक-मानवता है। आज के संक्रान्तिकाल में मैं साहित्य द्रष्टा एवं कवि का यही कर्तव्य समझता हूं कि वह युग-संघर्ष के भीतर जो नवीन लोक - मानवता जन्म ले रही है, वर्तमान के कोलाहल से वधिर, पट से आच्छादित मानव-हृदय के मंच पर जिन विश्व-निर्माण, विश्व एकीकरण की नवीन सांस्कृतिक शक्तियों का प्रादुर्भाव तथा अन्त:क्रीड़ा हो रही है, उन्हें अपनी वाणी द्वारा अभिव्यक्ति देकर जीवन जीवन संगीत में झंकृत कर सके और थोथी बौद्धिकता तथा सैद्धान्तिकता के मृगजल - मरु

---

१ - माधुरी, मार्च १९२७, पृष्ठ १७८।
२ - सौवर्ण : पृष्ठ ७७।

में भटकती हुई अन्त:शून्य मनुष्यता का ध्यान उसके चिर उपेक्षित अन्तर्जगत तथा अन्तर्जीवन की ओर आकर्षित कर सके।'[1] लोक - मानवता के विकास के लिए उन्होंने सूक्ष्म सांस्कृतिक कल्पना भी की है जिसमें आध्यात्मिकता का समावेश है।[2] 'मैं जनतंत्रवाद की आन्तरिक (आध्यात्मिक) परिणति को ही अन्तर्चेतनावाद अथवा नवमानवतावाद कहता हूं।'[3] इस नवमानवतावाद में उन्होंने अरविन्द-दर्शन की भी सहायता ली है। तात्पर्य यह कि पंत जी के अनुसार, प्रकृति और लोक - मानवता ही काव्य के विषय हैं।

महादेवी वर्मा का मत :

जीवन की सामंजस्यपूर्ण अभिव्यक्ति और आध्यात्मिकता - दो काव्य के वर्ण्य हैं। प्रथम के विषय में वे कहती हैं कि :-

'यदि हम पहले से मिली सौन्दर्य-दृष्टि और आज की यथार्थदृष्टि का समन्वय कर सकें, पिछली सक्रिय भावना से बुद्धिवादी शुष्कता को स्निग्ध बना सकें और पिछली सूक्ष्म चेतना का व्यापक मानवता में प्राण-प्रतिष्ठा कर सकें तो जीवन का सामंजस्य पूर्ण चित्र दे सकेंगे।'[4]

आध्यात्मिकता की पुष्टि में वे कहती हैं :-

'काव्य के लिए आध्यात्मिक पृष्ठभूमि उचित है या नहीं, इसका निर्णय व्यक्तिगत चेतना ही कर सकेगी। जो कुछ स्थूल, व्यक्त, प्रत्यक्ष और यथार्थ नहीं है, यदि केवल यही आध्यात्म से अभिप्रेत है तो हमें वह सौन्दर्य, शील, शक्ति, प्रेम आदि की सभी सूक्ष्म भावनाओं में फैला हुआ अनेक अव्यक्त सत्य संबंधी धारणाओं में अंकुरित, इन्द्रियानुभूत

---

१ - गद्य पथ : पृष्ठ १०७।
२ - रश्मि बंध : भूमिका : पृष्ठ २०-२१।
३ - उत्तरा : प्रस्तावना : पृष्ठ ४।
४ - महादेवी का विवेचनात्मक गद्य : पृष्ठ ७७।

प्रत्यक्ष की अपूर्णता से उत्पन्न उसी की परोक्ष रूप भावना में छिपा हुआ और अपनी उर्ध्वगामी वृत्तियों से निर्मित विश्व-बन्धुता, मानव-धर्म आदि के ऊंचे आदर्शों में अनुप्राणित मिलेगा । यदि परम्परागत धार्मिक रूढ़ियों को हम अध्यात्म की संज्ञा देते हैं तो उस रूप में काव्य में उसका महत्व नहीं रहता । इस कथन में अध्यात्म को बलात् लोक-संग्रही रूप देने का या उसकी एकान्तिक अनुभूति अस्वीकार करने का कोई आग्रह नहीं है । अवश्य ही वह अपने ऐकान्तिक रूप में भी सफल है परन्तु इस अरूप रूप की अभिव्यक्ति लौकिक रूपकों में हो तो संभव हो सकेगी । '[१]

डा० राम कुमार वर्मा :

वर्मा जी के मत से काव्य में राष्ट्र प्रेम, लौकिक-प्रेम, और आदर्श नैतिक भावनाओं को प्रश्रय मिलना चाहिए । लौकिक प्रेम और रीतिकालीन कविता की सुष्ठु सुरुचिपूर्ण व्यंजना के विषय में वे कहते हैं कि :-

' साहित्य में लौकिक जीवन का चित्रण कोई पाप नहीं है यदि वह सुरुचिपूर्ण ढंग से हो । '[२] राष्ट्रीयता के विषय में वे कहते हैं कि वर्तमान समय में देशभक्ति संबंधी कविताओं की ही रचना होनी चाहिए ।[३]

इस प्रकार इन छायावादी कवियों के दृष्टिकोणों का समवेत आकलन करने पर हम पाते हैं कि इन्होंने - प्रेम, राष्ट्रीयता, प्रकृति, लोकमानवता और आध्यात्मिकता को काव्य का वर्ण्य माना है ।

---

१ - आधुनिक कवि : भाग १, भूमिका, पृष्ठ १७-१८ ।
२ - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : पृष्ठ ३०४ ।
३ - साहित्य समालोचना : पृष्ठ ३० ।

आंग्ल रोमांटिक कवियों के मत :

अंग्रेजी साहित्य के ` रोमांटिक युग ` में ` प्रकृति ` काव्य का मुख्य वर्ण्य विषय रहा है । उस युग में ` प्रकृति की ओर लौटो ` प्रसिद्ध उक्ति थी । कालरिज ने कहा :-

" In our life alone does nature live ".

शैली ने भी प्रकृति - प्रसंग में विचरण करने की आकांक्षा व्यक्त की है :-

" Away, away from men and town
To the wild wood and down
To the wilderness
Where the soul must not repress
Its music --------" 1

प्रकृति - प्रेम के अतिरिक्त काव्य में सर्वसाधारण वस्तुओं का भी वर्णन होने लगा । ` लिरिकल बैलड ` की भूमिका से यह स्पष्ट है । ` रीपर ` कविता में वर्ड्सवर्थ ने नैराश्य, करुणा, अतीत चित्रण, भूतकालीन युद्ध, प्राकृतिक दुःख आदि विषयों को स्वीकार किया है :-

"Will no one tell me what she sings ?
Perhaps the plaintive numbers flow
For old, unhappy, far - off things
And battles long ago;
Or is it some more humble lay
Familiar matter of today ?
Some natural sorrow, loss or pain, 2
That has been and may be again,"

---

1. Golden Treasury : The Invitation, pg. 269.

2. Ibid, pg. 255.

निष्कर्ष :

अंत में यह कहा जा सकता है कि छायावाद के वर्ण्य विषय सुख, सौन्दर्य, वेदना, विलास, वासना, प्रेम, करुणा, दीनता, रहस्य, दर्शन-प्रकृति, नारी, राष्ट्र, आशा - निराशा, संघर्ष, जय-पराजय, पलायन, विद्रोह, उद्बोधन वैराग्य, मृत्यु-कामना, स्वातंत्र्य, विश्व-प्रेम, स्वप्न, कुंठा तथा समवेदना आदि हैं ।[१] इनमें से कुछ प्रमुख विषयों का वर्णन आगे दिया जा रहा है ।

छायावादी काव्य में प्रकृति

द्विवेदी - युगीन काव्य के प्रसंग में हमने अवलोकन किया कि किस प्रकार उस युग का उत्तरार्द्ध अन्तर्मुखीनता से प्रभावित होने लगा था और उसका प्रभाव प्रकृति चित्रण पर पड़ रहा था । मैथिलीशरण गुप्त प्रकृति कवियों की रचनाओं में कोरी इतिवृत्तात्मकता की जगह लाक्षणिकता और सूक्ष्मता का विधान हो रहा था ।

छायावाद युग में आकर प्रकृति चित्रण में महान् परिवर्तन हुआ । इस परिवर्तन के मूल में तद्युगीन अन्तर्मुखता तो है ही, पर आंग्ल रोमांटिक कवियों का भी प्रभाव है । आंग्ल रोमांटिक कवि प्रकृति के प्रति सर्ववादी दृष्टि रखते थे । प्रसिद्ध दार्शनिक रूसो प्रकृति की विविधता, विचित्रता, नीरवता, भयंकरता, सभी के प्रति असाधारण आकर्षण रखता था । रोमांटिक कवियों ने भी प्रकृति के बहुविध चित्रण किये । वे केवल प्रकृति के स्निग्ध -शान्त वर्णन ही नहीं किए अपितु प्रकृति की समस्त उग्रता, भयंकरता और कुरूपता को भी चित्रण किया । वर्ड्सवर्थ ने तो घोषित किया कि प्रकृति का उग्र रूप (Nature red in tooth and claw) उसने नहीं चित्रित किया है । परन्तु शेली

१- छाया
१ - हिन्दी की छायावादी कविता का कला विधान: डा0 बलवीर सिंह रत्न, पृष्ठ ७0 ।

क्रायरन आदि ने प्रकृति के व्यग्र - उग्र रूपों को भी अपनाकर उसे पूर्णता प्रदान किया। छायावादी कवियों ने इन कवियों का अध्ययन किया और उनके प्रभावों को छायावाद में ले आए। यहां यह कहा जा सकता है कि इन कवियों पर पश्चिम का प्रभाव तो है परन्तु अनुकरण नहीं।

छायावादी काव्य में प्रकृति - वर्णन का अपना एक विशिष्ट स्थान है। समस्त हिन्दी काव्य में प्रकृति का ऐसा वैभवपूर्ण, शालीन और सौन्दर्यमण्डित रूप अन्यत्र कहीं नहीं हुआ है। प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, राम कुमार वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी प्रकृति कवियों ने एक से एक बढ़कर प्रकृति के चित्र खींचे हैं। वस्तुत: छायावाद प्रकृति काव्य है।[१] इस काव्य में कोकिल की पंचम तान, पुष्पों का मन्द-मन्द मुस्कान, अरुण की एक किरण अम्लान, स्वर्ण-सुख-श्री-सौरभ संयुक्त विहान का एक ओर चित्रण है तो दूसरी ओर प्रलय-सिन्धु का गान, पत्रों का मर्मरस्वर, अनिल विलोड़ित गगन सिन्धु में प्रलयंकर बाढ़ का भी चित्रण मिलता है। इस प्रकार छायावाद युग एक नवीन प्रकृति चित्रण की प्रवृत्ति को लेकर उद्भूत होता है।

प्रकृति चित्रण - प्रणाली :

कहा जा चुका है कि छायावादी प्रकृति चित्रण अपनी समस्त विविधताओं के साथ हमारे समक्ष उपस्थित होता है। उसमें प्रकृति के समस्त व्याग्र - उदग्र, पुरुष-कोमल, रहस्य - सौन्दर्यमय रूपों की अभिव्यक्ति हुई है। उसी प्रकार इस काव्य में प्रकृति - चित्रण की समस्त पाश्चात्य और भारतीय प्रणालियां भी अपने उत्कृष्टतम रूप में मिलती हैं।

(१) प्रकृति का आलम्बन रूप मे चित्रण : छायावादी काव्य में प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण हुआ है। पंत जी इस युग के सर्वश्रेष्ठ प्रकृतिवादी कवि हैं। उन्होंने स्वीकार किया है कि मुझे काव्य रचना करने की प्रेरणा प्रकृति की सुरम्य क्रीड़ास्थली

---

१ - छायावाद का पतन : डा० देवराज : पृष्ठ ११।

मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश को है। पंत जी की यह उक्ति महाकवि वर्ड्सवर्थ से प्रभावित मालूम पड़ती है।[1] जो भी हो, पंत जी ने - प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण किया है। उन्होंने अपने प्रकृति-प्रेम को इन शब्दों में व्यक्त किया है :-

छोड़ - द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया।
बाले, तेरे बाल - जाल में
कैसे उलझा दूं लोचन
भूल अभी से इस जग को। (पल्लव : पृष्ठ ८६)

आलम्बन रूप में प्रकृति - चित्रण के कई रूप हैं - वस्तु परिगणन शैली और सांशि संश्लिष्ट चित्रण। पंत जी ने इनमें से प्रत्येक का चित्रण किया है। वस्तु परिगणन शैली का एक उदाहरण देखें :-

रंग रंग के फूलों से रिलमिल
हंस रही सखियां मटर खड़ी
मखमली पेटियों से लटकी
छिमियां छिपाये बीज लड़ी
- - - - - - - - - - -
महके कटहल, मुकुलित जामुन
जंगल में फरवेरी फूलीं
फूले आड़ू, नीबू, दाड़िम
आलू गोभी, बैगन, मूली (ग्राम्या)

---

1. 'Fair seed time hath my soul
And I grew up
Fostered alike by beauty and fear
Much favoured my birthplace'
(Prelude, I, pg. 1.)

प्रकृति का संश्लिष्ट चित्रण भी पंत काव्य में दर्शनीय है :-

> 'पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश, पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश
> मेखलाकार पर्वत अपार, अपने सहस्त्र दृग-सुमन फाड़
> अवलोक रहा है बार-बार, नीचे जल में निज महाकार
> जिसके चरणों में पला ताल, दर्पण - सा फैला है विशाल
> गिरि का गौरवगाकर झरझर, मद में नस-नस उत्तेजित कर
> मोती की लड़ियों से सुन्दर, झरते हैं झाग भरे निर्झर।'

नौका-विहार, अप्सरा, वसंत, झंझा में नीम्र बादल आदि पंत की प्रसिद्ध कविताएं हैं जिनमें प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण हुआ है। पंत जी के काव्य में इन्द्रियबोध जगाने वाले लाल-नीले-बादल, भौंरे, कोयल आदि के स्वर, नदियों - हवाओं आदि का शोर, पुष्पों और उपवनों की गन्ध आदि सब आये हैं। वर्ण-ध्वनि, गन्ध, स्पर्श और स्वाद का इन्द्रियबोध जगाने में अन्य कोई कवि पंत जी की समता नहीं कर सकता। इस क्षेत्र में वे अंग्रेजी कवि जॉन् कीट्स के 'ओड टू नाइटिंगल' का स्मरण कराते हैं जहां उसने पंचेन्द्रियबोधों का चित्रण प्रकृति में किया है। पंत की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

क - बांसों का झुरमुट
संध्या का झुर पुट
हैं चहक रहीं चिड़ियां
टी - वी - टी - टुट् - टुट् (युगान्त)

ख - वन, वन, उपवन
छाया उन्मन उन्मन गुंजन
नववय के कलियों का गुंजन

रुपहले सुनहले आम्र-बौर
नीले-पीले और ताम्र भौंर,
रे गंध - अंध हो ठौर - ठौर

उड़ पांति पांति से चिर उन्मन
करते मधु के वन में गुंजन (गुंजन)

पंत जी के ही समान 'प्रसाद' जी ने भी प्रकृति चित्रण में पंचेन्द्रियों के विलास बात कही है :-

पीता हूं, हां मैं पीता हूं
यह स्पर्श, रूप, रस गंध भरा ।' (कामायनी)

'प्रसाद' जी ने जहां एक ओर 'प्रकृति विभूति मनोहर शान्त' कहकर प्रकृति चित्रण किया, वहीं दूसरी ओर वे उसकी नितनूतनता पर भी मुग्ध हैं :-

'प्रकृति के यौवन का शृंगार, करेंगे कभी न बासी फूल ।'

प्रकृति का भयंकर रूप अवलोकन करें :-

'दिग्दाहों से धूम उठे, या
जलधर उठे क्षितिज तट के !
सघन - गगन में भीम प्रकम्पन
झंझा के चलते झटके ।' (कामायनी)

इस प्रकार छायावादी काव्य में प्रकृति का आलम्बन रूप में विविध चित्रण हुआ है । उसमें विविध प्रकार के पशु-पक्षी, तितली, जुगनू, छाया, चन्द्रिका, सन्ध्या, निर्झर, वन, पर्वत, मैदान, मेघ, रजत-ज्योत्स्ना, सूर्योदय आदि तथा प्रकृति के भयंकर रूपों झंझा-झकोर, घन-गर्जन, प्रलय - सिन्धु का निनाद - सभी का चित्रण अत्यन्त सुन्दर रूप में हुआ है ।

२ - मानवीकरण रूप में प्रकृति-चित्रण : कहा जा चुका है कि छायावादी काव्य अन्तर्मुखी है और यह प्रकृति काव्य में भी देखी जाती है । कवियों ने अपनी अन्तर्मुखी चेतना के चित्र प्रकृति में देखे और प्रकृति उन्हें मानवीय क्रिया-व्यापारों से युक्त दिखाई पड़ी । सच तो

यह है कि उन्होंने प्रकृति के नाना विध रूपों में अपनी ही आन्तरिक चेतना की खोज की है :- `मरु, लता, कुंज अरु निर्झर में हूं खोज रहा अपना विकास` । अतः प्रकृति के सभी उपकरण मानवीय क्रिया - कलापों से युक्त दिखाई पड़ते हैं । छायावादी काव्य में मानवीकरण रूप में प्रकृति के चित्र दिखाई पड़ते हैं :-

क - : `सिन्धु - सेज पर धरा वधू अब,
तनिक संकुचित बैठी सी ।
प्रलय-निशा की हलचल स्मृति में,
मान किये सी ऐंठी सी ।` (कामायनी)

ख - सैकत-शय्यापर दुग्ध-धवल, तन्वंगी - गंगा ग्रीष्म विरल
लेटी है श्रान्त क्लान्त, निश्चल,
गोरे अंगों पर सिहर-सिहर, लहराता ताल तरल सुन्दर
चंचल अंचल सा नीलाम्बर ।` (गुंजन)

ग - दिवसाव सान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे - धीरे । (अपरा)

घ - धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ बसंत रजनी
तारक मय नव वेणी-बंधन
शीश-फूल कर शशि का नूतन
रश्मि वलय सित घन अवगुंठन
मुक्ताहल अविराम बिछा दे, चितवन से अपनी
पुलकती आ वसंत रजनी । (नीरजा)

३ - पृष्ठभूमि के रूप में : इस प्रकार का प्रकृति-चित्रण प्रबन्ध-काव्यों में पाया जाता है गीति काव्यों में ऐसे चित्रणों के लिए अवकाश नहीं है और छायावादी काव्य में प्रबन्धात्मकता का अभाव है। ऐसी दशा में पृष्ठभूमि रूप में प्रकृति का चित्रण कम हुआ है। फिर भी कामायनी, आंसू, ग्रन्थि आदि में प्रकृति का ऐसा चित्रण मिलता है।

उषा सुनहले तीर बरसती
जय लक्ष्मी सी उदित हुई,
उधर पराजित काल रात्रि भी
जल में अंतर्निहित हुई।
वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का
आज लगा हंसने फिर से,
वर्षा बीती, हुआ सृष्टि में
शरद विकास नये सिर से। (कामायनी)

४ - अलंकृत रूप में प्रकृति-चित्रण :- अनादि काल से ही प्रकृति और मानव साहचर्य होने के कारण कवि प्राय: सौन्दर्य के सभी उपमान प्रकृति के क्षेत्र में ही ढूंढता रहा है। मृग-शावकों के नेत्रों में प्रिय के नेत्रों की सी सरलता, मदमत्त गज की मंथर गति में प्रिया की गति का साम्य देखता रहा है। इस प्रकार कवि जड़ और चेतन, प्रकृति और मानव में साम्य उत्पन्न कर देता है और प्राकृतिक वस्तुओं को चेतन मानव के शरीरांगों का उपमान बनने के कारण विशेष महत्व मिलता है। इस प्रकार के प्रकृति - वर्णन में, प्रकृति के रूप और व्यापारों की तुलना में सारी सृष्टि से अप्रस्तुतों को ढूंढ-ढूंढकर लाया जाता है। ऐसे वर्णनों और मानवीकरण में अन्तर है। मानवीकरण में तो प्रकृति को सजीव मानव के रूप में चित्रित किया जाता है परन्तु यहां प्रकृति के दृश्यों या व्यापारों पर नये - नये अलंकारों या अप्रस्तुतों का आरोपमात्र किया जाता है। सौन्दर्योपासक

'प्रसाद' जी में ऐसे अलंकृत चित्रणों की भरमार है। उन्होंने अपने वर्णनों में नए उपमानों का तो प्रयोग किया ही है, पुराने उपमानों का नया उपयोग भी। उन्होंने अमूर्त भावों के लिए मूर्त प्राकृतिक उपादानों का प्रयोग किया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा की घिसी - पिटी प्रणाली को उन्होंने त्याग दिया है। नीचे कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं:-

क - नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघवन बीच गुलाबी रंग। (कामायनी)

ख - या कि, नव इन्द्र नील लघु श्रृंग
फोड़कर धधक रही हो कान्ति
एक लघु ज्वालामुखी अचेत
माधवी रजनी में अश्रान्त। (कामायनी)

अब पंत की कविताओं के कुछ उदाहरण लें :-

क - चन्द्रातप सा मृदु सूर्यातप
तारों से हिम बिन्दु रहे कंप। (उत्तरा)

ख - कभी उर में अगणित मृदुभाव
कूंजते हैं विहंगों से हाय!
अरुण कलियों से कोमल घाव
कभी खुल पड़ते हैं असहाय। (पल्लव)

महादेवी में भी प्रकृति का अलंकृत रूप मिलता है :-

चांदनी घुला - अंजन सा, विद्युत मुसकान बिछाता
सुरभित समीर पंखों से, उड़ जो नभ में घिर आता।
वह वारिद तुम आना बन। (यामा)

निराला में भी ऐसे उदाहरण दर्शनीय है :-

क – वह टूटे तरु की छूटी लता – सी दीन –
दलित भारत की विधवा है। – (अपरा)

ख – मद भरे ये नलिन नयन मलीन हैं
अल्प जल में या विकल लघु मीन हैं। (परिमल)

प्रकृति का यह वर्णन रीतिकालीन प्रकृति-चित्रण की अलंकृत वर्णन से सर्वथा भिन्न है। रीतिकालीन प्रकृति चित्रण में पिष्टपेषण, रूढ़िवादिता और अनुराग पूर्ण चित्रण मिलता है। छायावादी कविता ने इसमें नवीनता का संचार किया। उन्होंने प्रकृति वर्णन में सहृदयता का समावेश करके यह सिद्ध कर दिया कि यदि कवि अपनी पूर्ण रागात्मिकावृत्ति के साथ प्रकृतिकाव्य करें तो उत्कृष्टतम सौन्दर्य सन्निविष्ट काव्य-प्रणयन किया जा सकता है। छायावादी काव्य का यह सुष्ठु रूप केशव के 'श्रोणित पत्लित कपाल यह' वाले नीरस, अप्राकृतिक एवं अरुचिकर वर्णन से बिल्कुल भिन्न है।

५ – उद्दीपन रूप में :- हिन्दी काव्य में उद्दीपन रूप में चित्रण की एक परिपाटी है। जिसमें प्रकृति व्यक्ति के सुख – दुःखों में उद्दीपन का काम करती है। वह मनुष्य के सुखों में सहयोग और दुःखों का विस्तार कर देती है। सूर की गोपियां, तुलसी की सीता और जायसी के विरह वर्णनों तथा रीतिकालीन शृंगार व्यंजना में प्रकृति उद्दीपन का काम करती है। छायावादियों ने भी प्रकृति – चित्रण जायसी के बारह मासे या बिहारी की नायिकाओं के सन्दर्भ में प्रयुक्त उद्दीपन शैली से सर्वथा भिन्न रहा है। प्राचीन काव्यों में प्रकृति नायक – नायिकाओं के मनोभावों को उद्दीप्त किया करती थी, परन्तु छायावादी कविता में प्रकृति स्वयं कवि के मनोगत भावों या मनोविकारों को उद्दीप्त करती है। कवि अपने मनोविकारों के रंगों से प्रकृति को रंग देता है। कालरिज कहता है – 'हम वही पाते हैं जो हम देते हैं अर्थात् काव्य में प्रकृति का वही रूप मिलता है जो

हम उसे भावों के रंग में रंगकर देते हैं। कुछ उदाहरण अपर्याप्त न होंगे :-

क - मधु बरसती विधु किरण है कांपती सुकुमार
पवन में है पुलक मंथर, चल रहा मधु भार,
तुम समीप, अधीर इतने आज क्यों है प्राण ?
छक रहा है किस सुरभि से तृप्त होकर घ्राण ? (कामायनी)

ख - गगन के उर में भी है घाव
देखती तारायें भी राह,
बंधा विद्युत् छवि में जल वाह
चन्द्रकी चितवन में भी चाह,
दिखाते जड़ भी तो अपनाव
अनिल भी भरती ठंडी आह। (पल्लव)

ग - जागो फिर एक बार,
प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें,
अरुण-पंख तरुण-किरण
खड़ी खोल रही द्वार
जागो फिर एक बार (अपरा : पृष्ठ १६)

६ - प्रकृति का रहस्य रूपों में चित्रण :- प्रकृति में चेतना सत्ता का आभास कोई नवीनबात नहीं है। संस्कृत वाङ्मय में तो अत्यन्त प्राचीन काल से ही ऐसा होता आया है। `प्रसाद` जी ने भी प्रकृति में चेतना के होने की बात को भारतीय चिन्तन परम्परा से संबद्ध माना है :-

`साहित्य में विश्व सुन्दरी प्रकृति में चेतना का आरोप संस्कृत वाङ्मय में प्रचुरता से होता आया है। यह प्रकृति अथवा शक्ति का रहस्यवाद `सौन्दर्य लहरी` के शरीरं त्वं शम्भो` का अनुकरण मात्र है। वर्तमान हिन्दी में इस अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यंजना

होने लगी है, वह साहित्य में रहस्यवाद का विकास है। इसमें परोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहम् का इदम् से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है। `प्रसाद` काव्य में तो इस प्रकार का चित्रण प्रचुर मात्रा में हुआ है :-

क - महानील इस परम व्योम में अन्तरिक्ष में ज्योतिमान
ग्रह, नक्षत्र, और विद्युत्कण, किसका करते से संधान ?
छिप जाते हैं और निकलते, आकर्षण से खिंचे हुए,
तृण वीरुध लहलहे हो रहे, किसके रस से सिंचे हुए ?
सिर नीचा कर किसकी सत्ता, सब करते स्वीकार यहाँ
सदा मौन हो प्रवचन करते, जिसका वह अस्तित्व कहाँ ?
हे अनन्त रमणीय कौन तुम ? यह मैं कैसे कह सकता,
कैसे हो, क्या हो, ? इसका तो भार विचार न सह सकता।` (कामायनी)

`निराला` ने भी प्रकृति में रहस्यमयी सत्ता का अनुभव किया है :-

किस अनन्त का नीला अंचल हिला - हिलाकर
आती हो तुम सजी मंडलाकार ?
एक रागिनी में अपना स्वर मिला मिलाकर
गाती हो ये कैसे गीत उदार ? (अपरा)

महादेवी जी भी इस रहस्यमयी सत्ता का आभास पाती हैं :-

क - कनक से दिन, मोती सी रात
सुनहली सांझ, गुलाबी प्रात
मिटाता रंगता बारंबार
कौन यह जग का चित्राधार ?`

ख - `मुस्काता नभ सन्देश भरा
अलि, क्या प्रिय आने वाले हैं ?` (नीरजा)

पंत की ` मौन निमंत्रण ` कविता इसका अच्छा उदाहरण है :-

न जाने कौन अये द्युतिमान
जान मुझको अबोध अनजान
सुझाते हो तुम पथ अनजान
फूंक देते छिद्रों में गान । ` (पल्लव)

७ - प्रतीक रूप में प्रकृति-चित्रण :- अपने मन के भावों को व्यक्त करने के लिए अथवा किसी सत्य की व्यंजना के लिए छायावादी कवियों ने प्रकृति का सहारा लिया है । ऐसी दशा में प्रकृति चित्रण कवि का मुख्य लक्ष्य नहीं होता । प्रकृति तो एक माध्यम बन जाती हैं अभिव्यक्ति का । कुछ उदाहरण दृष्टव्य है :-

क - थ झंझा झकोर गरजन था
विजली थी नीरद - माला
पाकर इस शून्य हृदय को
सबने आ डेरा डाला । (आंसू)

ख - पतझड़ था झाड़ खड़े थे
सूखी - सी फुलवारी में
किसलय नव कुसुम बिछाकर
आए तुम इस क्यारी में । (आंसू)

महादेवी जी ने भी राष्ट्रीय - स्वातंत्र्य की लालसा में प्राकृतिक प्रतीकों का प्रयोग किया है :-

कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो
क्या तिमिर, कैसी निशा है
आज विदिशा ही दिशा है
दूर खग आ निकटता के
अमर बंधन में फंसा है
प्रलय - घन में आज राका घोल दो । (आधुनिक कवि - १)

८ - द्रष्टा भाव रंजित प्रकृति-चित्रण :- छायावादी काव्य की यह सर्वोत्कृष्ट विशेषता रही है कि इसमें कवि या आश्रय के भावों का आरोपण प्रकृति पर किया गया है। इस प्रकार प्रकृति के बड़े ही मार्मिक चित्र बन पड़े हैं। 'प्रसाद' की 'कामायनी' में चिन्ताग्रस्त मनु को सभी कुछ उदासी, विराग और नीरसता से पूर्ण दिखाई पड़ते हैं :-

नील गरल से भरा हुआ
यह चन्द्र कपाल लिये हो,
इन्हीं निमीलित ताराओं में
कितनी शांति पिये हो। (कामायनी : कर्म)

महादेवी जी भी आत्मगत भावों को संध्या पर आरोपित करती हुई कहती हैं कि :-

'प्रिय, सान्ध्य - गगन मेरा जीवन।
साधों का आज सुनहलापन
घिरता विषाद का तिमिर सघन
संध्या का नभ से मूक - मिलन
यह अश्रुमती हंसती चितवन। (आधुनिक कवि - १)

६ - उपदेशकर्त्री-प्रकृति :- छायावाद-पूर्व भी हिन्दी कवियों ने प्रकृति का उपदेशात्मक रूप में चित्रण किया था। महात्मा तुलसीदास ने 'बरषहिं जलद भूमि निभराये। यथा नवहिं बुध विद्या पाये।' कहकर इसका परिचय दिया, तो बिहारी ने 'नहि पराग नहि मधुर मधु' द्वारा। प्रसिद्ध छायावादी कवि पंत जी प्रकृति से उपदेश ग्रहण करने को कहते हैं -

हंसमुख प्रसून सिखलाते
पल भर भी तो हंस पाओ
अपने उर की सौरभ से
जग का आंगन भर लाओ।

महादेवी वर्मा भी मुरझाते पुष्पों को देखकर कहती हैं :-

विकसते मुरझाने को फूल
उदय होता छिपने को चन्द
यहां किसका अनन्त यौवन ?

' कामायनी ' की श्रद्धा कलियों उपदेश पाती हैं :-

ये मुद्रित कलियां दल में
सब सौरभ वन्दी कर लें
सरस न हो मकरंद विन्दु से
खुल कर तो ये भर लें ।
सूखे, भड़ें और तब कुचले
सौरभ को पावोगे
फिर आमोद कहां से मधुमय
वसुधा पर लाओगे ? '

निष्कर्ष :-

तात्पर्य यह कि छायावादी काव्य में प्रकृति का नानाविध चित्रण हुआ है । प्रकृति का प्रयोग छायावाद में इतनी विपुलता से हुआ है कि कि कतिपय आलोचकों ने इसे प्रकृतिवाद तक कह डाला है । यह प्रकृति कवि के मनोभावों का रूप धारण कर अनेक - रूपों में हमारे समक्ष प्रस्तुत होती हैं । यदि छायावाद को ' आश्चर्य या रहस्य का पुनर्जागरण ' (रोनासां आफ वन्डर) कहा गया, तो सच है कि प्रकृति में रहस्यमयी सत्ता के भान के कारण ही। अत: प्रकृति में ही कवि को एक रहस्यमयी सत्ता के भी भान होते हैं ।